ओड़िया-प्रवेश

देवनागरी लिपि के माध्यम से

भुवन वाणी ट्रस्ट

लखनऊ ३

ओड़िया-प्रवेश

उड़िया - देवनागरी वर्णमाला

ଅ अ	ଆ आ	ଇ इ	ଈ ई	ଉ उ
ଊ ऊ	ଋ ऋ	ଏ ए	ଐ ऐ	ଓ ओ
	ଔ औ	ଅଂ अं	ଅଃ अः	
କ क	ଖ ख	ଗ ग	ଘ घ	ଙ ङ
ଚ च	ଛ छ	ଜ ज	ଝ झ	ଞ ञ
ଟ ट	ଠ ठ	ଡ ड	ଢ ढ	ଣ ण
ତ त	ଥ थ	ଦ द	ଧ ध	ନ न
ପ प	ଫ फ	ବ ब	ଭ भ	ମ म
ଯ य	ର र	ଳ ळ	ଲ ल	ଵ व
ଶ श	ଷ ष	ସ स	ହ ह	କ୍ଷ क्ष
	ଡ଼ ड़		ଢ଼ ढ़	

भुवन वाणी ट्रस्ट

प्रभाकर निलयम्

४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

विषय-प्रवेश

वाणी, भाषा और लिपि

मन के भावों और उद्‌गारों को मुख से प्रकट करना, यही वाणी है। पशु, पक्षी अथवा मनुष्यों में जब कोई वर्ग एक प्रकार की वाणी बोलता है, उस बोली से परस्पर भावों को कहता, सुनता और समझता है, तब वाणी के उस प्रकार को उस विशिष्ट-वर्ग की भाषा की संज्ञा दी जाती है। और उसी भाषा को जब चिह्नों-आकृतियों में लिख कर प्रकट किया जाता है तब उन्हीं चिह्नों और आकृतियों को उस वर्ग-विशेष की लिपि कहा जाता है।

कुछ विद्वानों के मत से धरातल पर पृथक्-पृथक् भूखण्डों में विभिन्न समयों पर मानवों की सृष्टि और विकास होता रहा है। वे सब एक ही स्थान पर एक ही मानव से उत्पन्न नहीं हैं। फलतः उन सब की भाषाएँ भी एक दूसरे से बिलकुल पृथक् और स्वतंत्र हैं। इन पृथक् कुलों को ये विद्वान् आर्य, मंगोल, सेमेटिक, हेमेटिक, द्रविड़ आदि की संज्ञा देते हैं।

किन्तु भारतीय मत की घोषणा इसके विपरीत है, और इस्लामी मान्यता भी उसका अनुमोदन करती है। इस मत के अनुसार सारी मानव जाति एक ही मूल पुरुष मनु अथवा आदम की सन्तान हो कर मानव अथवा आदमी कहलायी। कालान्तर में विभिन्न भूखण्डों में फैलने, एक दूसरे से अलग-थलग होने और वहाँ की विशिष्ट जलवायु और संस्कारों से प्रभावित होने के फल-स्वरूप वह मानव जाति अनेक रूप, रंग, आकार और बोलियों में विभक्त होती गई। यह परिवर्त्तन लाखों वर्षों से चलते आ रहे हैं और इसलिए उन मानव-समूहों के रूप, रंग, आकार और बोलियों के अन्तर भी इतने सघन हो गये हैं कि ज्ञान की उपेक्षा करने वाले और केवल तर्क, अनुमान, प्रयोग, अनुसंधान आदि भौतिक साधनों को ही ज्ञान मान कर उन पर निर्भर रहने वाले पाश्चात्य विद्वानों

तथा उनके अनुवर्ती भारतीयों का भ्रमित होजाना स्वाभाविक ही है। यह बात इनसे ओझल हो जाती है कि कितना भी बड़ा वैषम्य इन जातियों के लक्षणों में दिखाई देता हो, उनकी आकृतियों और भाषाओं में कुछ ऐसे तथ्य लाखों वर्ष बाद भी झलकते हैं जो सारी मानव जाति को किसी पुरातन काल में एक मूल मानव का पितृत्व प्रदान करते हैं।

भारतीय वाङ्मय के सृष्टिक्रम-सम्बन्धी विशाल ज्ञानकोश को विस्तार-भय से किनारे भी रख दें, तो भी जन-साधारण की समझ में आने वाली कुछ बातें तो हमारे मत की पुष्टि करती ही हैं। उदाहरण के लिए— (१) द्रविड़कुल की भाषाएँ आर्यकुल की भाषाओं से पाश्चात्य मत में-मूलतः पृथक् मानी गई हैं। किन्तु संस्कृत की वर्णाक्षरी, उनका वर्गीकरण तथा लिपि का बायें से दाहिने लिखना उनके समान ही है। इसके विपरीत अनेक आर्यकुल की भाषाओं का खरोष्टी लिपि में (दायें से बायें) लिखा जाना और वर्णों की संख्या, क्रम, वर्गीकरण आदि में बड़ा अन्तर है। (२) अरबी और संस्कृत की शब्दावली और लिपि में नाममात्र को भी मेल नहीं है, किन्तु उनकी व्याकरण में बड़ी समानता है, जबकि संस्कृत का अपने आर्यकुल ही की अन्य भाषाओं के व्याकरण से साम्य नगण्य सा है। (३) उत्तर-पश्चिम में सुदूरस्थ ईरान की अवेस्ता और गाथाओं की भाषा में असुर का अहुर उच्चारण है। बीच के पूरे आर्यावर्त्त में इसका अभाव होने के बाद उत्तर-पूर्व में असम प्रदेश में फिर दस को दह और गोसाई को गोहाई बोलते हैं। (४) नेपाल के आदिम निवासी आर्यकुल के रूप, आकृति से सर्वथा भिन्न हैं। किन्तु वहाँ कुछ ही समय से आबाद आर्यकुल के राज-परिवार तथा राना-परिवार की आकृतियों पर नेपाली प्रभाव प्रत्यक्ष है; आदि, आदि।

भारतीय भाषाएँ

अस्तु, जब मानव मात्र एक मनु (आदम) की सन्तान हैं और आज पृथ्वी पर उपलब्ध विविध भाषाओं और बोलियों का आदि-स्रोत एक है, तब भारत के निवासियों और भारतीय भाषाओं को मूलतः पृथक् मानना, उनका बुनियादी वर्गीकरण करना कहाँ तक समुचित है। जहाँ तक

हिन्दी, गुरमुखी, सिन्धी, राजस्थानी, ओड़िया, बंगला, असमिया, गुजराती, मराठी, कश्मीरी, मैथिली, नेपाली, सिंहली आदि भाषाओं, लिपियों अथवा बोलियों का सम्बन्ध है इन सब की वर्णमाला, शब्दावली, व्याकरण आदि में इतना अधिक साम्य है कि उनको एक परिवार से बाहर समझने की रत्ती भर गुंजाइश नहीं। ये सभी प्राचीन संस्कृत की पौत्री और भारतीय जनपदों में शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री आदि प्राकृत अथवा उनके अपभ्रंशों की पुत्रियाँ हैं।

उर्दू को तो हिन्दी से पृथक् मानना ही भूल है। उसका तो हिन्दी से वही सम्बन्ध है जो एक रूह का दो क़ालिब से—एक प्राण का दो शरीर से। अ़रबी लिपि में लिखी जाने अथवा अ़रबी-फ़ारसी भाषाओं के शब्दों के अधिक समाविष्ट होजाने से वह पृथक् भाषा नहीं हो सकती। कदाचित् लोगों को कम पता है कि नगरों में नहीं ग्रामों तक में नित्य बोली जाने वाली और हिन्दी कही जाने वाली भाषा में एक तिहाई से अधिक शब्द अ़रबी, फ़ारसी, तुर्की आदि के बार-बार बोले जाते हैं। उनमें ऐसे भी अ़रबी शब्दों की भरमार है जिनको लोग ठेठ हिन्दी की सम्पत्ति समझने लगे हैं, उनके अ़रबी-फ़ारसी होने की कल्पना भी नहीं करते। जैसे हलुवा, साइत (मुहूर्त्त), मेहरिया, हमेल, तरह, अन्दर, अगर, अचार, अजगर, अतलस, अबीर, अमीर, गरीब, अरक, मेवा, मल्लाह मसखरा, मक्कर, लाला, लहास, स्याही, संदूक, रुमाल आदि।

अलबत्ता भारत की दक्षिणी भाषाओं—मलयाळम, तॅलुगु, कन्नड़ और तमिळ—का शेष भारतीय भाषाओं और लिपिओं से भेद अधिक दूर का है। किन्तु उनके अक्षरों का वर्गीकरण देवनागरी वर्णमाला के समान है। इसके अलावा संस्कृत के शब्द तत्सम और तद्भव रूप में इतने अधिक दक्षिणी भाषाओं में घुलमिल गये हैं कि उनका अन्य भारतीय भाषाओं से तादात्म्य प्रत्यक्ष है, भले ही कलेवर पृथक् दिखाई दे।

उद्देश्य

उपर्युक्त भाषाई पहलुवों के अलावा, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक दृष्टि से भी सारा देश परस्पर ऐसा गुथ गया है कि उसमें

एकात्म-भाव के सर्वत्र दर्शन होते हैं। उसके प्रभाव की छाप सभी भाषाओं के साहित्य पर मौजूद है। इसलिए अपने-अपने क्षेत्र में विभिन्न लिपियों के फलते-फूलते रहने के बावजूद, यह ज़रूरी है कि राष्ट्र में सबसे अधिक सुपरिचित और व्याप्त देवनागरी लिपि के माध्यम से प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा और साहित्य को भारत के कोने कोने तक पहुँचाया जाय। भारत भूमि के हर कोने में प्रस्फुटित वाङ्मय को हर भारतवासी तक पहुँचाया जाय। लिपि और भाषा के सेतुकरण द्वारा सारे राष्ट्र का एकीकरण—यही इस 'भाषा-शिक्षण-सीरीज़' का उद्देश्य है।

उद्देश्य-पूर्ति का माध्यम देवनागरी लिपि

आसेतु हिमालय, सारे देश के साहित्य, संस्कृति, आचार-विचार और सन्तों की वाणी को, किसी एक क्षेत्र अथवा समुदाय तक सीमित न रहने देकर, सारे भारतीयों की सामूहिक सम्पत्ति बनाना ही राष्ट्रीय एकीकरण की उपलब्धि है। नरसी मेहता के भजन, टैगोर की गीताञ्जलि, तिरुवल्लर का तिरुक्कुरळ् और सन्त नानक की अमर वाणी क्रमशः गुजरात, बंगाल, तमिळनाडु और पञ्जाब को ही नहीं, अपितु सारे देश को प्राण प्रदान करें, यह उनके अनुवाद मात्र के द्वारा संभव नहीं। जिस भाषारूपी सुधाभाण्ड से यह अमृत प्रवाहित हुए हैं उन भाषाओं के बोध के बिना वह प्राण सुलभ नहीं। किन्तु यह भी सत्य है कि एक व्यक्ति के लिए इतनी लिपियों को सीख कर उन भाषाओं पर अधिकार प्राप्त करना संभव नहीं।

प्रत्यक्ष प्रणाली (डाइरेक्ट मेथड)

अस्तु, एक ही मार्ग है। देवनागरी लिपि, जो सारे देश में अपेक्षाकृत सर्वाधिक व्याप्त है, भारतीय प्राचीन वाङ्मय की भाषा—देवभाषा संस्कृत की अपनी लिपि है, उसके माध्यम से हम आरंभिक ज्ञान प्राप्त करें। देवनागरी लिपि में क्षेत्रीय भाषाओं की वर्णमाला, उनके विशेष अक्षर, उच्चारण, मात्राएँ, सामान्य व्याकरण, वाक्यरचना, देशज शब्द एवं संस्कृत से प्राप्त तत्सम और तद्भव शब्दों के उदाहरण आदि का कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त करने के उपरांत सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषा के किसी मान्य लोकप्रिय ग्रंथ को चुन कर उसके अध्ययन द्वारा अपने अर्जित उपर्युक्त ज्ञान

का अभ्यास किया जाय। धीरे-धीरे, अभ्यास के द्वारा उस भाषा में अभीष्ट ज्ञान सुलभ होगा। ग्रंथ के चयन में यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि उसका कथानक देश के दूसरे क्षेत्रों में पूर्वपरिचित हो। रामायण, महाभारत, इस्लामी हदीस, पारसी गाथा, सिख गुरुओं की वाणी—यह ऐसे विषय हैं जिनमें वर्णित कथानक और उपदेश सारे देश की जनता को भली भाँति मालूम हैं। अक्षर-बोध, सामान्य शब्द-परिचय और व्याकरण-बोध के साथ-साथ, कथा का विषय जाना-समझा होने पर शिक्षार्थी को—लिपि, भाषा और साहित्य के माध्यम से अपने को सारे राष्ट्र का व्यावहारिक दृष्टि से सच्चा नागरिक बनने के अभिलाषी को—उस भाषा अथवा ग्रंथ को समझने में सरलता होगी। प्रत्यक्ष प्रणाली (डाइरेक्ट मेथड) का यह मार्ग ही सुगम है। सम्पादक 'वाणीसरोवर' इसका स्वतः प्रमाण हैं। विना नियमित अध्ययन के, बंगला, अ़रबी, उर्दू, असमिया, गुरमुखी आदि अनेक भाषाओं के लिप्यन्तरण और अनुवाद की क्षमता इस 'प्रत्यक्ष-प्रणाली' द्वारा उन्होंने प्राप्त की। इस मार्ग से एक क्षेत्र का निवासी, सब अथवा अधिक से अधिक क्षेत्रों की भाषाओं और वहाँ के लोक-साहित्य को आत्मसात् कर सकता है। अलबत्ता यदि किसी भाषा-विशेष में अधिक पारंगत होने की अभिलाषा है, तो उस भाषा के विशेष अध्ययन का मार्ग अपनाना ज़रूरी होगा।

यह तो हुई भावनात्मक एकता की बात। देवनागरी लिपि के माध्यम से अन्य भारतीय भाषाओं को पढ़ने-समझने की एक ज़रूरत भी पैदा हो गई है। बहुत बड़ी संख्या में एक क्षेत्र या राज्य के निवासी दूसरे क्षेत्र अथवा राज्य में स्थायी तौर पर बस गये और बसते जा रहे हैं। वह अपने परिवार और सक्षेत्रीयों के साथ परस्पर तमिळ, बंगला, सिन्धी आदि अपनी मातृभाषाएँ बोलते हैं, और परम्परा के अभ्यास से सदैव बोलते भी रहेंगे, किन्तु उस क्षेत्र-विशेष में शिक्षा-दीक्षा पाने के कारण बच्चे अपनी लिपि के ज्ञान से अपरिचित रह जाते हैं। फलतः नित्य की बोलचाल को छोड़ कर, अपनी मातृभाषा के सम्पन्न और बहुमूल्य वाङ्मय से वे अपरिचित होते जा रहे हैं, और इस प्रकार अपनी क्षेत्रीय संस्कृति से दिन प्रति दिन दूर होते जायँगे। अन्य क्षेत्रों में आवासित उन परिवारों, जिनकी संख्या आज के आज़ाद भारत में अपरिमित है, के लिए तो अनिवार्यतः

आवश्यक है कि देवनागरी लिपि में अपनी मातृभाषा के अमूल्य साहित्य को पढ़ कर अपनी क्षेत्रीय साहित्यिक निधि को अपने बीच संजोये रखें।

अन्य लिपियों का विरोध नहीं

उपर्युक्त प्रयास से यह किसी प्रकार अभीष्ट नहीं कि भारत में प्रयुक्त अन्य लिपियों के शिक्षण अथवा प्रचार में जरा भी कमी हो। वह वैसे ही, वरन् अधिक फलती-फूलती रहें। किन्तु यह भी न भूलना चाहिए कि अन्य भाषाओं और लिपियों से सम्बन्धित जन, अथवा आपकी लिपि और भाषा के ही लोग जो परिस्थिति वश दूसरे क्षेत्रों में स्थायी तौर पर बस गये हैं, उनको आपके प्रचुर साहित्य से वञ्चित होने की परिस्थिति पैदा न होने पाये। दो हज़ार वर्ष पूर्व तमिलनाडु के अमर सन्त तिरुवल्लर का 'पञ्चम वेद' समझा जाने वाला नीति-ग्रंथ 'तिरुक्कुऱळ्' अपनी लिपि के साथ-साथ देवनागरी लिपि के कलेवर में राष्ट्र के कोने-कोने में लोकप्रिय होने के स्थिति में आ जाय, यह संकल्प भी कम पुनीत नहीं। जय भारत !

ओड़िया प्रदेश (ओड़ीसा)

ओड़िया प्रदेश भारत का पूर्वी-समुद्रतटीय राज्य है। इस प्रदेश का प्राचीन नाम 'उत्कल' है। जगत्प्रसिद्ध 'जगन्नाथ-धाम' के कारण यह प्रदेश सारे भारत के लिए पर्यटन-भूमि और सारे राष्ट्र को जोड़ने की एक प्रमुख कड़ी रही है। ओड़ीसा प्रदेश एक कृषिप्रधान राज्य है। यह अपने प्राकृतिक सौन्दर्य, तीर्थ, प्राचीन कला आदि में अति सम्पन्न है। जगन्नाथ जी का मन्दिर और उसकी मूर्ति कला तथा भुवनेश्वर जैसे तीर्थ हैं जहाँ रथयात्रा के अवसर पर राष्ट्र के कोने-कोने से लाखों व्यक्ति हर साल आते और परस्पर सम्पर्क करते हैं। लगभग चार हज़ार वर्ष पुरानी खण्डगिरि और उदयगिरि की गुफाएँ, महानदी जैसी विशाल सलिला, आरम्भिक सदियों के सैकड़ों प्राचीन मंदिर, धौलिगिरि पर अशोक का शिलालेख, विश्वविख्यात कोणार्क मन्दिर, चिलका झील, विश्व का सबसे बड़ा बाँध हीराकुड, समुद्र का मनोहर दृश्य तथा स्नान, राउरकेला का कारखाना— इस छोटे से राज्य में बहुत कुछ दर्शनीय है।

संस्कृत साहित्य के मुकुट-ग्रंथ 'साहित्यदर्पण' के प्रणेता श्री विश्वनाथ

महापात्र महामहोपाध्याय और ओड़िया प्रदेश को राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक—सब प्रकार से समृद्धि की ओर लाने वाले श्री मधुसूदन दास प्रख्यात 'मधु बाबू' जैसी विभूतियों से यह प्रदेश गौरवान्वित रहा है।

लोहा, कोयला, वन की सम्पत्ति के साथ-साथ आधुनिक कल-कारखानों की भी अब कमी नहीं है। कपड़ा, लोहा, अल्मूनियम, कागज, सीमेण्ट आदि के उत्पादन-स्थान हैं। यह है उत्कल का समृद्धिशाली प्रदेश !

ओड़िया वर्णाक्षरी, उच्चारण तथा भाषा

ओड़िया की वर्णमाला 'देवनागरी वर्णमाला' के समान है। केवल 'ज' दो प्रकार का है। एक वर्ग्य 'ज' जो जल, जन्तु आदि में प्रयुक्त होता है। दूसरा अवर्ग्य 'ज' जो शब्द के आदि में 'य' होने पर 'ज' पढ़ा जाता है, जैसे यदि-जदि, याहाँकर-जाहाँकर, यज्ञ-जज्ञ। देवनागरी लिपि में इस अवर्ग्य 'ज' को 'य़' के समान दिखाया गया है; किन्तु मध्य या अन्त में आने पर 'नियम' 'समय' के अनुसार 'य' ही बोला जाता है। 'रेफ' के साथ 'य' अन्त में होने पर भी 'ज' पढ़ा जायगा, जैसे 'सूर्य्य' का 'सूर्ज्ज'। देवनागरी-लिप्यन्तरण में अवर्ग्य 'ज' य अथवा ज दोनों प्रकार से लिखा गया है। पढ़ने में ओड़िया-पद्धति पर दोनों सूरतों में 'ज' ही पढ़ना उचित होगा; किन्तु हिन्दी-पद्धति पर 'य' अथवा 'ज' इच्छानुसार पढ़ सकते हैं। उसी प्रकार 'व' को प्राय: 'ब' पढ़ते हैं।

संस्कृत के तो सभी तत्सम शब्द हिन्दी के समान ही ओड़िया में प्रयुक्त होते हैं। अंग्रेजी तथा अरबी से आये शब्द भी ओड़िया में हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के समान ही सामान्य हेर-फेर से बोले जाते हैं। जैसे सन्दुक, रुमाल, दुवात, कलम, साबुन, आलमारा क्लास आदि। और भी शब्द हिन्दी तथा ओड़िया में जैसे के तैसे बोले जाते हैं—जैसे कुदाल, खुरपी, दर्जी, माला, साहुकार, महाजन, रूमाल, काम, घड़ी, जुआर, बाजरा, चादर, थाली, बहुत, दूर, पहरा, आन (दूसरा), जलेबी पेड़ा, आदि। कुछ हेर-फेर के साथ बोले जाने वाले शब्द—जैसे दुध-दूध, किछु-कुछ, फुल-फूल, साँडुआसी-सँड़सी, दोकान-दुकान, मसला-मसाला, उपरे-ऊपर, दोयात-दावात, रुटि-रोटी, बाहुड़ि-बहुरि, ताउआ-तवा, उजुड़ि-उजड़, बेलेणा-बेलन, लुहा-लोहा, पथर-पत्थर, पाहाड़-पहाड़, खट-खाट, बाधाई-बधाई, बीचि-बीच, ढांकुणी-

डक्कन, गाळि-गली, करचुली-करछुली, चामुचा-चिमचा, नळ-नाला, पाणि-पानी, गछ-गाछ (पेंड़), चाउळ-चावल, कालि-कल, पेटपूरा-भरपेट, ठिकणा-ठिकाना, निद-नींद, बदळि गलाणि - बदल गया है, खुब-ख़ूब, हात-हाथ, पहँचिले-पहुँचे, माटि-मिट्टी, धोबा-धोबी, मोचि-मोची, डालबुँट-दालमोठ, डालि-दाल, मसुर-मसूर, मुग-मूंग आदि ।

ओड़िया अक्षरों की लिखावट देखने में बड़ी विकृत और कठिन प्रतीत होती है । किन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो अधिकांश अक्षर—जैसे क, ख, ग, घ, ज, त, थ, ध आदि ऐसे हैं जिनमें उनके मुख एक ओर से दूसरी ओर घुमा देने से देवनागरी के समान बन जाते हैं । ओड़िया में अक्षर भी उतने ही हैं जितने देवनागरी लिपि में । केवल मराठी लिपि का 'ळ' का विशेष प्रयोग होता है । यह शब्द के आरम्भ में कभी नहीं आता—जैसे कळिकाळ, कमळ; जबकि 'ल' का प्रयोग आदि, मध्य, अन्त सर्वत्र होता है—जैसे कलम, लावण्य, मसाला आदि । तमिळ आदि दक्षिणी भाषाओं के समान ही ओड़िया में भी अकारान्त शब्द सस्वर बोला जाता है, न कि जैसा हिन्दी में 'जल' सस्वर लिख कर 'जल्' हलन्त बोलते हैं । पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर 'ओड़िया देवनागरी वर्णमाला' का चार्ट दिया हुआ है । "यह अच्छा बकस है" में हिन्दी में 'है' लगाया जाता है । ओड़िया में संस्कृत की पद्धति पर 'एहा भल सिन्दुक' पर्याप्त है । 'है' के लिए 'अटे' कहने की ज़रूरत नहीं । पाठकों के ज्ञान के लिए आगे आरंभिक व्याकरण का प्रकरण दिया गया है । व्याकरण का सामान्य बोध हो जाने के बाद ओड़िया का अद्भुत अलंकारमय रीतिकालीन काव्य 'बैदेहीशबिळास' का पर्याप्त अंश देकर 'प्रत्यक्ष प्रणाली' द्वारा भाषा के अध्ययन का साधन प्रस्तुत किया गया है । ग्रंथ और ग्रंथकार का परिचय भी रामायण के आरंभ में दिया गया है । ग्रंथ की विशद भूमिका को ग्रंथ के संपूर्ण हो जाने के बाद देने के लिए सोलह पृष्ठों का स्थान छोड़ दिया गया है । व्याकरण-प्रकरण में एक-दो क्रियाओं के विभिन्न कालों तथा संज्ञा-सर्वनाम की विभक्तिओं के उदाहरण को देखकर, उसी प्रकार अन्य क्रियाओं आदि के रूप बनाए जा सकते हैं । अगले पृष्ठ पर बैदेहीशबिळास से उद्धृत पंक्तियों में पाठक देखेंगे कि हिन्दीभाषी के लिए, देवनागरी लिपि में रूपान्तरित कर देने मात्र से, ओड़िया भाषा को समझना कितना सुगम हो गया है ।

बळ्कळ बोलि पिन्धाइ कौशेय बसन,
ब्याघ्रचर्म भ्रमरे सिन्धुआ शय्यामान । य । ६३ ।
बिविध स्वादु पदार्थ कराइ अशन,
बसाइ चूळ कुसुमें चन्दन लेपन । य । ६४ ।
बसिला ओळगि पाशे जरता सुमुहीं,
बेष्टिता लता पादपे परा कोळ बिहि । य । ६५ ।

सरलार्थ—जरता ने ऋषि को प्रणामपूर्वक बलकल कहकर एक रेशम वस्त्र पहना दिया और व्याघ्रचर्म कहकर कोमल पट्टवस्त्रों की शय्या पर उन्हें बैठाया, उन्हें विविध स्वादु पदार्थ खाने को दिये। उनकी जूड़ा को फूलों की माला से बाँध शरीर पर चन्दन लगा दिया। अनन्तर जरता ने ऋषि को अपनी भुजाओं से आलिंगन किया, जिस प्रकार लता वृक्ष को वेष्टित करती है। (६३ से ६५)

बळ्कळ—पेड़ की छालें; कौशेय वसन—रेशम-वस्त्र; सिन्धुआ—एक प्रकार का पट्ट वस्त्र; अशन—भोजन; पादप—वृक्ष। (६३ से ६५)

बिज्ञा से प्रथम रसे चन्द्र चाळि देला,
बिज्ञाने ऋषिकुमार उत्ताने शोइला । य । ६६ ।

सरलार्थ—शृंगाररसपण्डिता जरता के चन्द्रचालन करने से ऋषि मोहित हो हीठ के बल सोये। (६६)

बिज्ञा—पण्डिता; प्रथमरस—आदिरस; बिज्ञाने—अचेतन होकर; उत्ताने—उद्ध्वंमुख, पीठ के बल। (६६)

बिधुनन आरम्भिला पुरुषायितरे,
बनपति उपरे हरिणी लीळा करे । य । ६७ ।
बैश्वानर परे नृत्य करे शुभ्रापाङ्गी,
बिषम समस्याहिँ पूरण श्ळेषभङ्गी । य । ६८ ।

सरलार्थ—जरता ने अब विपरीत रति शुरू कर दी। ऋषि पर उसके क्रीड़ा करते समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो सिंह पर मृगी, अग्नि पर स्वाहा देवी, अथवा विष्णु पर लक्ष्मी नृत्य कर रही हों। इन दो पदों में कवि ने श्लेष छटा से विषम समस्याएँ पूरी कीं। (६७-६८)

बिधुनन—रति; पुरुषायित—विपरीत रति; वनपति—सिंह, ऋषि; हरिणी—मृगी, हिरनी, हरिणाक्षी (श्लेष); वैश्वानर—अग्नि (अग्नि तुल्य ऋषि), परमात्मा, विष्णु; शुभ्रापांगी—स्वाहादेवी, लक्ष्मी; (श्लेष) (६७-६८)

उपर्युक्त पंक्तियों में बैदेहीश-विळास के रचयिता उपेन्द्रभञ्ज नरेश ने शृंगी ऋषि के उपाख्यान का वह वर्णन किया है जिसमें राजा लोमपाद के राज्य में सूखा पड़ने पर उनके आदेश से जरता नाम की वेश्या स्त्री-पुरुष के भेद से अपरिचित ऋषि शृंग को ठग कर राज्य में लाने जाती है; ताकि अकाल ग्रस्त राज्य में उस महात्मा के आगमन से वर्षा

हो। अस्तु, अब ओड़िया भाषा पर ध्यान दीजिए। (१) बळ्कळ, कौशेय, बसन, ब्याघ्रचर्म, भ्रमर, शय्या, अशन, कुसुम, चन्दन, लेपन, पादप, विज्ञान, नृत्य आदि प्रायः नब्बे प्रतिशत शब्द संस्कृत के तत्सम अथवा सामान्य तोड़-मरोड़ के साथ तद्भव रूप में वर्तमान हैं, जो न केवल हिन्दी वरन् भारत के अन्य भाषाभाषियों को भी सुपरिचित हैं। (२) रसे, विज्ञाने, उपरे, परे आदि अधिकरण कारक (संस्कृत के अनुरूप), जिसमें 'में' अथवा 'पर' विभक्ति-चिह्न लगता है—व्याकरण के पृष्ठ बाईस पर 'कारक' देखिए। अर्थात् रस में, विज्ञान में, उपर, पर, आदि। (३) बोलि, कराइ, बसाई, चूल, उपरे, पूरण आदि भी प्रायः सभी भाषाओं में जाने-समझे शब्द हैं।(४) वसन, य़े, विज्ञाने, विषम आदि शब्दों को ओड़िया-बंगला-असमिया की पद्धति पर क्रमशः बसन, जे, बिज्ञाने, बिषम आदि पढ़ें, अथवा शुद्ध हिन्दी के ढङ्ग पर उनके मौलिक रूप में पढ़ें। (५) पृष्ठ तेईस पर अव्यय प्रकरण में 'उठि' का अर्थ 'उठकर' दिया हुआ है। उसी के अनुसार उपर्युक्त पंक्तियों में बोलि, पिन्धाइ, कराइ, के प्रयोग हैं—अर्थात् बोलकर, पहना कर, करवा कर आदि। इस प्रकार क्रियाओं के काल, वचन, कारक, अव्यय आदि को व्याकरण-अंश की सहायता से समझिए और दूसरी क्रियाओं तथा शब्दों के रूप भी उसी प्रकार बनाने का अभ्यास कीजिए। (६) ओळगि, कोल ऐसे कुछ देशज ओड़िया शब्दों को ऊपर दिये हिन्दी अनुवाद की सहायता से समझिए और ध्यान में चढ़ाइए ताकि आगे पाठ में उनके पुनः आने पर आपको वह शब्द याद रहें। मूल ग्रंथ के साथ हिन्दी अनुवाद देने में यह भी एक उद्देश्य है।(७) कुछ शब्द जैसे—पिन्धाइ, उत्ताने कुछ शब्द हैं जो उत्तर प्रदेश के ग्रामों में भी क्रमशः पिंधाना (पहनाना), उताने—इस प्रकार प्रयुक्त होते हैं। ऐसे ही और भी देशज शब्द हैं जो अन्य क्षेत्रीय शब्दों से मिलते-जुलते हैं अथवा संस्कृत से बिलकुल बदल कर देशज का रूप ले लेते हैं—जैसे बाँउ-गाँउ (बजाना-गाना), गण्डा (चौआ), बाहुड़ि-(बहुरि)। कुछ शब्द काव्य में छन्द की गति अथवा अन्त्यानुप्रास (तुकान्त) के लिए अपने वास्तविक रूप से कुछ बदल कर सभी भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं, वही बात ओड़िया काव्य में भी वर्तमान है। वह भी हिन्दी अनुवाद के सहारे आसानी से समझ में आ जायँगे।

व्याकरण-प्रकरण से मिला कर अभ्यास के लिए कुछ वाक्य—

१ .आपणा गाँ कब्बा सहर सम्बन्धरे दश धाडिर ज्ञातव्य लेखन्तु ।	१. अपने गाँव या शहर के बारे में आठ पंक्तियों में लिखिए ।
२. तु एणे तेणे देखना ।	२. तू इधर-उधर मत देख ।
३. मुँ याउँ-याउँ ताकु देखिल ।	३. जाते - जाते मैंने उसे देखा ।
४. एबे आपण कुआड़े जिबे ?	४. अब आप कहाँ जायँगे ?
५. एठारु मो वास-स्थान बहुत दूर	५. यहाँ से मेरा निवास बहुत दूर है ।
६. आपण के उँठारु आसुछन्ति ।	६. आप कहाँ से आ रहे हैं ?
७. मुँ कलकत्तारु आसुछि ।	७. मैं कलकत्ता से आ रहा हूँ ।
८. तुमि एठि बस, सुविधारे बस ।	८. तुम यहाँ बैठो, मज़े में बैठो ।
९. आपणंक घर केड़े भल ! चारि आड सफा ।	९. आपका मकान कितना सुन्दर है ! चारो ओर साफ़-सुथरा है ।
१०. रथयात्रा अमर महान् उत्सव ।	१०. रथयात्रा हमारा बड़ा उत्सव है ।
११. से मते कथा शुद्धा कहिले नाहिं ।	११. उन्होंने मुझसे बात तक नहीं की ।
१२. तुमे आजि गा (गात्र) धुअ नाहिं ।	१२. तुम आज मत नहाओ ।
१३. मो घरकु अतिथि आसि थिले ।	१३. मेरे घर मेहमान आये थे ।
१४. आपणंक सम्पर्के मुँ बहुत शुणिलि ।	१४. आपके बारे में मैंने बहुत सुना है ।

विदेशी शब्द

कुछ विदेशी शब्द ओड़िया भाषा में भी ऐसे घुलमिल गये हैं कि उनका अंग बन गये हैं। वे ही शब्द न केवल हिन्दी वरन् अन्य भारतीय भाषाओं में भी प्रायः सुपरिचित हैं। ऐसे शब्दों के कुछ उदाहरण:—

आलमारी, आफसोस, आशरफि, आसमान, एलमुनियम, कालेज, कमीज, किशमिश, कूर्निश, क्लास, खुशि, गेट, चशमा, डाक्टर, तामाशा, दर्जी, दुशमन, नकशा, नालिश, नोटिस, पोस्ट, फुरसत, बकशिश, बदमाश, बिस्कुट, बुरुश, मासूल, मुन्शी, मुश्किल, लश्कर, लाश, शयतान, शरम, शरिक, शर्त, शहर, शहिद, शागिर्द, शादी, शाबाश, शुरु, शेमिज, सुपारिश, स्कूल, सन्दूक, साबुन सिनेमा, स्टीमार, स्टेशन, स्ट्रीट, हामेशा, हिस्टिरिया, हुँशियार, आदि। दिन, मास तथा संख्याओं के लिए भी प्रायः समान ही शब्द हैं।

क्षेत्रीय उच्चारण

लिखने-पढ़ने-समझने के लिए उपर्युक्त विवरण है। अब रही क्षेत्रीय-उच्चारण की बात। प्रत्येक क्षेत्र की जलवायु तथा परम्परागत संस्कार व अभ्यास का उच्चारण पर प्रभाव अनिवार्य है। उदाहरण के लिए बंगला में 'जल' लिख कर 'जोल', 'कृष्ण' लिख कर 'कृष्टो' पढ़ते हैं। उसी प्रकार पञ्जाबी (गुरमुखी) में 'घड़ी', 'घण्टाघर' लिखते हैं, किन्तु 'घड़ी', 'घण्टा' तथा 'घर' में 'घ' का उच्चारण 'घ' और 'ग' के बीच का करते हैं। यह उनका परम्परागत भाषाई प्रयत्न है। अतः दूसरे क्षेत्रों के निवासियों के लिए दो विकल्प हैं। (१) एक तो यह कि अपने निजी क्षेत्र के प्रयत्नों के अनुसार जैसा लिखा है वैसा पढ़ें—जैसे जल, कृष्ण, घड़ी, घण्टाघर आदि। यह भाषा की अशुद्धि न होगी। अलबत्ता प्रयत्नों की कमी कही जायगी। (२) दूसरा यह कि उस भाषा के क्षेत्र में प्रयुक्त प्रयत्नों के तदनुरूप ही उच्चारण करने का शौक रखें। इस दशा में उनको उस भाषा और क्षेत्र से सम्बन्धित जनों से सत्संग और आलाप-संलाप का सहारा लेना होगा। यह शौक पुस्तकों के आधार पर असंभव है।

आगे आरंभिक व्याकरण प्रस्तुत है :—

सर्वनाम

[ओड़िया भाषा में तीन पुरुष (उत्तम, मध्यम, अन्य) तथा क्रमशः कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण आदि सात कारक और एक तथा बहु-वचन में सर्वनामों के रूप इस प्रकार बनते हैं। जानना चाहिए कि ओड़िया भाषा में सर्वनाम तथा क्रियाओं के रूप में पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग का भेद नहीं होता। कर्म तथा सम्प्रदान के रूपों में भी अन्तर नहीं होता:—]

मुँ	मैं, मैंने	तू, तु	तू, तूने
मोते, मते	मुझको, मुझे	तोते, तने	तुझको, तुझे
मो सहित, मो द्वारा	मुझसे	तो सहित तो द्वारा	तुझसे
मोते	मेरे लिए	तोते, तने	तेरे लिए
मोठारु, मो अपेक्षा	मुझसे	तो ठारु, तो अपेक्षा	तुझसे
मोर	मेरा, मेरी, मेरे	तोर	तेरा, तेरी, तेरे
मोठारे, मो उपरे	मुझमें, मुझपर	तो ठारे, तो उपरे	तुझमें, तुझपर
आमे, आम्भे	हम, हमने	तुमे, तुम्भे	तुम, तुमने
आमकु, आम्भंकु	हमको, हमें	तुमकु, तुम्भंकु	तुमको, तुम्हें
आम द्वारा, आम्भ द्वारा	हमसे	तुम द्वारा, तुम्भ द्वारा	तुमसे
आमकु, आम्भंकु	हमारे लिए	तुमकु	तुम्हारे लिए
		तुम ठारु,तुम अपेक्षा	तुमसे
आम द्वारा	हमसे	तुमर, तुम्भर	तुम्हारा, तुम्हारी, तुम्हारे
आमर	हमारा, हमारी, हमारे	तुम ठारे, तुम उपरे	तुममें, तुमपर
आम ठारे, आम उपरे	हममें, हमपर		
निजे, आपे	अपने ने	आपण	आप, आपने
निजकु, आपणाकु	अपनेको	आपणंकु	आपको
निज द्वारा, निज-सहित, आपणा द्वारा	अपनेसे	आपणंक द्वारा	आपसे
निजकु, आपणाकु	अपने लिए	आपणंकु	आपके लिए
निज ठारु, आपणा-ठारु, निज अपेक्षा	अपनेसे	आपणंक ठारु, आपणंक अपेक्षा	आपसे
निजर, आपणार	अपना, अपनी, अपने	आपणंकर	आपका, आपकी, आपके
निज ठारे,आपणा ठारे, निज उपरे, ,, उपरे	अपने में, अपने पर	आपणंक ठारे, आपणंक उपरे	आपमें, आपपर

से, ताहा, ता	वह, उसने, उस,	ए, एहा	यह, इसने
ताकु	उसको	एहाकु	इसको, इसे
ता सहित, ताहा द्वारा,		एहा सहित,एहा द्वारा	इससे
ता द्वारा	उससे	एहाकु	इसके लिए
ताकु	उसके लिए	ए ठारु, एहा ठारु	इससे
ताहा ठारु, ता ठारु	उससे		
तार, ताहार	उसका, उसकी, उसके	एहार	इसका, इसकी, इसके
ता ठारे, ताहा ठारे, ताहा उपरे	उसमें, उसपर	एहा ठारे एहा उपरे	इसमें, इसपर
से, सेमाने,§ तांक	वे, उन्होंने	ए, एमाने§	ये, इन्होंने
तांकु, सेमानंकु	उनको, उन्हें	एहांकु, एमानंकु	इनको, इन्हें
तांक द्वारा, सेमानंक द्वारा	उनसे	एहांक द्वारा,एहांक-सहित, एमानंक द्वारा	इनसे
		एहांकु, एमानंकु	इनके लिए
तांकु, सेमानंकु	उनके लिए	एहांक(एमानंक)ठारु	इनसे
तांक ठारु,सेमानंक ठारु		एहांकर, एमानंकर	इनका,इनकी,इनके
,, अपेक्षा, ,, अपेक्षा	उनसे	एहांकठारे,एमानंकठारे ,, उपरे ,, उपरे	इनमें, इनपर
तांककर, सेमानंकर	उनका, उनकी, उनके	किए, काहा	कौन, किसने
		काहाकु	किसको, किसे
तांक ठारे (उपरे),		काहा द्वारा	किससे
सेमानंक ठारे(उपरे)	उनमें, उनपर	काहाकु	किसके लिए
		काहा ठारु,काहा अपेक्षा	किससे
किए, केउँमाने	कौन (बहुवचन)	काहार	किसका, किसकी,
केउँमाने	किन्होंने		किसके
काहांकु, केउँमानंकु	किनको, किन्हें	काहा ठारे,काहा उपरे	किसमें, किसपर
काहांक द्वारा, केउँमानंकु द्वारा	किनसे	ये, याहा (जे, जाहा)	जो, जिसने
काहांकु, केउँमानंकु	किनके लिए	याहाकु (जाहाकु)	जिसको, जिसे
काहांक ठारु केउँमानंक ठारु	किनसे	याहा (जाहा) द्वारा,	जिससे

§ 'सेमान' तथा 'एमान' शब्द बहुवचन तथा सम्मानित जन के लिए एकवचन में भी प्रयुक्त होते हैं।

काहांकर, केउँमानंकर	किनका, किनकी, किनके	याहाकु, जाहाकु	जिसके लिए
काहांक ठारे, काहांक-उपरे, केउँमानंक-ठारे, केउँमानंक उपरे	किनमें, किनपर	याहा (जाहा) ठारु, याहा अपेक्षा,	जिससे
		याहार, जाहार	जिसका, जिसकी, जिसके
ये,	जो (बहुवचन)	याहा ठारे,	
याहा, येउँमाने,	जिन, जिन्होंने	याहा (जाहा) उपरे	जिसमें, जिसपर
याहाँकु, येउँमानंकु	जिनको, जिन्हें	याहाँक ठारु, येउँमानंक-ठारु, याहाँक अपेक्षा, येउँमानंक अपेक्षा	जिनसे
याहाँक द्वारा, येउँमानंक द्वारा	जिनसे	याहांकर, येउँमानंकर‡	जिनका, जिनकी, जिनके
याहांकु, जाहांकु येउँमानंकु	जिनके लिए	याहांक ठारे, येउँमानंक-ठारे, याहांक उपरे,, उपरे	जिनमें, जिनपर

सहायक क्रिया

[जब केवल सर्वनाम के साथ 'होना' क्रिया वर्त्तमान काल में प्रयुक्त हो तब 'अछि-अटे' आदि का प्रयोग होता है। किन्तु संज्ञा के साथ में होने पर हिन्दी के प्रयोग के विपरीत, 'होना' क्रिया का प्रयोग नहीं होता। 'मैं हूँ' में 'मुँ अछि' किन्तु 'मैं लड़की हूँ' में 'मुँ बालिका' काफ़ी होगा। 'अछि या अटे' की आवश्यकता नहीं।]

मुँ अछि, मुँ अटे	मैं हूँ	आमे (आम्भे) अछुं (अटुं)	हम हैं
तु अछु (अटु)	तू है	तुमे (तुम्भे) अछ (अट)	तुम हो
आपण अछन्ति (अटन्ति)	आप हैं	से अछि (अटे)	वह है
ताहा अटे	वह है	ताहा अछि	वह है
सेमाने अछन्ति (अटन्ति)	वे हैं	से गुड़िक अछि	वे हैं
ए अछि	यह है	ए अटे	यह है
एमाने अछन्ति (अटन्ति)	ये हैं	एगुड़िक अछि (अटे)§	ये हैं
एगुड़िक अछि (अटे)	ये हैं	मुँ बालक (अटे)	मैं लड़का हूँ
मुँ बालिका (अटे)	मैं लड़की हूँ	ताहा बहि (अटे)	वह पुस्तक है

‡ ओड़िया में दो 'ज' बोले जाते हैं। एक वर्ग्य जैसे 'जल'। दूसरा 'जार (यार)' में अवर्ग्य 'ज'; य का ज। § बहुवचन बनाने के लिए 'माने' जोड़ते हैं और साधारणतः अन्य शब्दों में 'गुड़िक' जोड़ देते हैं।

से गुड़िक बहि	वे पुस्तकें हैं	ए कण	यह क्या है
एहा पुस्तक (बहि)	यह पुस्तक है	तुमे किए	तुम कौन हो
तुमे केउँठारे अछ	तुम कहाँ हो	ए दुइटि घर (अटे)	ये दो घर हैं
एगुड़िक फल (अटे) §	ये फल हैं	आपण छात्र	आप विद्यार्थी हैं
आपण भल (अटन्ति)	आप अच्छे हैं	से एठारे नाहिं	वह यहाँ नहीं है
ए चतुर नुहें	यह होशियार-नहीं है	सेमाने-एठारे नाहान्ति	वे यहाँ नहीं हैं

उसी प्रकार

[संस्कृत के अनुरूप ओड़िया भाषा में सामान्य वर्त्तमान काल में सहायक क्रिया 'है' आदि लगाये विना क्रिया का काम चल जाता है। जैसे संस्कृत में 'इदम् जलम्' में 'अस्ति' लगाये विना 'यह जल है' ऐसा बोध होता है, वैसे ही ओड़िया भाषा में 'एहा जल (पाणि)' कहना पर्याप्त है। हिन्दी के समान 'है' की जगह 'अटे' लगाने की ज़रूरत नहीं।]

एहा, (नपु. लि.)	ए, (पु० स्त्री लिंग)	... ...	यह
ताहा, ,,	से ,,	... ...	वह

एहा कण, ए कण	यह क्या है	एहा पाठशाला	यह पाठशाला है
ए झिअ (अटे)	यह लड़की है	एहा पाणि (जल)	यह पानी है
एहा फुल (अटे)	यह फूल है	से किए	वह कौन है
से राम	वह राम है	से झिअ (बालिका)	वह लड़की है
से मनुष्य	वह आदमी है	ताहा घर (अटे)	वह घर है
एहा भल काम	यह अच्छा काम है	एहा भल-बहि	यह अच्छी-पुस्तक है
एहा सुन्दर सिन्दुक (बाक्स)	यह सुन्दर सन्दूक है		
ए रोगी बालक	यह बीमार लड़का है	से चतुर व्यबसायी	वह चतुर व्यापारी है
से सान झिअ	वह छोटी लड़की है	ताहा गरम दुध	वह गरम दूध है
एहा सिन्दुकर कोलप	यह सन्दूक का ताला है	एगुड़िक भल काम	ये अच्छे काम हैं
		एगुड़िक भल बहि (अटे)	ये अच्छी-पुस्तकें हैं
एमाने रोगी बालक	ये बीमार-लड़के हैं	सेमाने गारिब लोक	वे गरीब-आदमी हैं
सेगुड़िक बड़ घर	वे बड़े घर हैं		
ए कागजगुड़िक सान	ये कागज-छोटे हैं		

§ ओड़िया में निर्जीव शब्द जैसे पुस्तक आदि में बहुवचन कर्त्ता के साथ एक वचन क्रिया का व्याहार होता है जैसे 'एगुड़िक फल अटे' न कि 'अटन्ति'।

[विभिन्न कालों में क्रिया के रूपों के उदाहरण ।]

सामान्य वर्त्तमान काल

मुँ आसे	मैं आता हूँ,§	तु आसु	तू आता है,
	मैं आती हूँ§	,,	तू आती है
से आसे	वह आता है	ए आसे	यह आता है
,,	वह आती है	,,	यह आती है
आमे (आम्भे) आसुं	हम आते हैं,	तुमे (तुम्भे) आस	तुम आते हो,
,,	हम आती हैं	,,	तुम आती हो
सेमाने आसन्ति	वे आते हैं,	एमाने आसन्ति	ये आते हैं,
,, ,,	वे आती हैं		ये आती हैं
आपण आसन्ति	आप आते हैं,		
,, ,,	आप आती हैं		

अपूर्ण वर्त्तमान काल

मुँ आसु अछि (आसुछि)	मैं आ रहा हूँ	तु आसु अछु (आसुछु)	तू आ रहा है
मुँ आसुछि	मैं आ रही हूँ	तु आसु अछु ,,	तू आ रही है
से आसुछि	वह आ रहा है	आम्भे आसुछुँ	हम आ रहे हैं,
से आसुछि	वह आ रही है	आमे आसु अछुँ	हम आ रही हैं
तुमे आसुछ (आसु अछ)	तुम आ रहे हो,	से (सेमाने) आसुछन्ति,	वे आ रहे हैं,
,, ,,	तुम आ रही हो	,, (आसु अछन्ति)	वे आ रही हैं
ए (एमाने) आसुछन्ति,	ये आ रहे हैं,	आपण आसुछन्ति	आप आ रहे हैं,
,, (आसु अछन्ति)	ये आ रही हैं	,, ,,	आप आ रही हैं
ए आसुछि	यह आ रहा है		
ए आसुछि	यह आ रही है		

सामान्य भविष्यत् काल

मुँ आसिबि	मैं आऊँगा, आऊँगी	तु आसिबु	तू आएगा, आएगी
से आसिब	वह आएगा	ए आसिब	यह आएगा
,,	वह आएगी	ए आसबे	यह आएगी
आमे आसिबुँ	हम आयेंगे, आयेंगी	तुमे आसिब	तुम आओगे,
से आसिबे	वे आयेंगे, आयेंगी		तुम आओगी
ए आसिबे	ये आयेंगे, आयेंगी	ए आसिबे	ये आयेंगी
आपण आसिबे	आप आएँगे, आएँगी	,,	ये आयेंगी

§ जानना चाहिए कि ओड़िया में पुल्लिग और स्त्रीलिंग कर्त्ता के साथ क्रिया के रूप में भेद नहीं होता।

सामान्य भूतकाल

मुँ आसिछि	मैं आया, आई	तु आसिछु	तू आया, आई
से आसिछि	वह आया	ए आसिछि	यह आया
,,	वह आई	,,	यह आई
आमे आसिछुँ	हम आए, आई	तुमे आसिछ	तुम आए, आईं
से (सेमानने) आसिछन्ति	वे आए,	ए (एमाने) आसिछन्ति	ये आए, आईं
,, ,,	वे आई	आपण आसिछन्ति	आप आए, आईं

अपूर्ण भूतकाल

मुँ आसु थिलि	मैं आ रहा था,	तु आसु थिलु	तू आ रहा था,
,, ,,	मैं आ रही थी	,, ,,	तू आ रही थी
से आसु थिला	वह आ रहा था	ए आसु थिला	यह आ रहा था
,, ,,	वह आ रही थी	,, ,,	यह आ रही थी
आमे आसु थिलुँ	हम आ रहे थे,	तुमे आसु थिल	तुम आ रहे थे,
,, ,,	हम आ रही थीं	,, ,,	तुम आ रही थीं
से आसु थिले	वे आ रहे थे,	आपण आसु थिले	आप आ रहे थे,
,, ,,	वे आ रही थीं	,, ,,	आप आ रही थीं
ए आसु थिले	ये आ रही थीं	ए आसु थिले	ये आ रहे थे

आज्ञा और विधि

तु कह	तू बोल	तु कर	तू कर
तु पढ़	तू पढ़	तुमे कह	तुम बोलो
तुमे कर	तुम करो	तुमे पढ़	तुम पढ़ो
आपण कहन्तु	आप बोलिए	आपण पढ़न्तु	आप पढ़िए
आपण करन्तु	आप कीजिए	तु सेठारे बस	तू वहाँ बैठ
तु एठाकु आ	तू यहाँ आ	तुमे एठाकु आस	तुम यहाँ आओ
तु बहि ने	तू पुस्तक ले	तुमे बहि निअ	तुम पुस्तक लो
तुमे सेठारे बस	तुम वहाँ बैठो	आपण सेठारे बसन्तु	आप वहाँ बैठिए
आपण एठाक आसन्तु	आप यहाँ आइए	आपण कोलप खोलन्तु	आप ताला खोलि

आपण बहि निअन्तु—आप पुस्तक लीजिए

[वर्त्तमान, भूत और भविष्यत्—इन कालों के कुछ अन्य प्रयोग ।]

मुँ आसि लि	मैं आया हूँ
मुँ आसि थिबि	मैं आया हूँगा
तु आसि थिलु	तू आया था
से आस ला	वह आया है
से आसि थिब	वह आया होगा
ए आसि थिला	यह आया था
आमे आसि लुँ	हम आये हैं
आमे आसि थिबुँ	हम आये होंगे
तुमे आसि थिल	तुम आये थे
से(सेमाने)आसि ले	वे आये हैं
से(सेमाने)आसि थिबे	वे आये होंगे
ए आसि थिले	ये आये थे
आपण आसि ले	आप आये हैं
आपण आसि थिबे	आप आये होंगे
मुँ आसि थिबि	मैं आई हूँगी
तु आसि थिबु	तू आई होगी
से आसि थिब	वह आई होगी
ए आसि थिब	यह आई होगी
आमे आसि थिलुँ	हम आई थीं
तुमे आसि ल	तुम आई हो
तुमे आसि थिल	तुम आई थीं
से आसि ले	वे आई हैं
से आसि थिले	वे आई थीं
ए आसि ले	ये आई हैं
ए आसि थिले	ये आई थीं
आपण आसि ले	आप आई हैं
आपण आसि थिले	आप आई थीं
मुँ आसि थिलि	मैं आया था
तु आसि लु	तू आया है
तु आसि थिबु	तू आया होगा
से आसि थिला	वह आया था
ए आसि ला	यह आया है
ए आसि थिब	यह आया होगा
आमे आसि थिलुँ	हम आये थे
तुमे आसि ल	तुम आये हो
तुमे आसि थिब	तुम आये होगे
से (सेमाने) आसि थिले	वे आये थे
ए आसि ले	ये आये हैं
ए आसि थिबे	ये आये होंगे
आपण आसि थिले	आप आये थे
मुँ आसि लि	मैं आई हूँ
मुं आसि थिलि	मैं आई थी
तु आसि लु	तू आई है
तु आसि थिलु	तू आई थी
से आसि ला	वह आई है
से आसि थिला	वह आई थी
ए आसि ला	यह आई है
ए आसि थिला	यह आई थी
आमे आसि लुँ	हम आई हैं
आमे आसि थिबुँ	हम आई होंगी
तुमे आसि थिब	तुम आई होगी
से आसि थिबे	वे आई होंगी
ए आसि थिबे	ये आई होंगी
आपण आसि थिबे	आप आई होंगी

कारक-प्रत्यय

[ओड़िया भाषा में संज्ञा अथवा सर्वनाम के सातों कारकों में शब्द के अन्त में निम्न प्रत्यय साधारणतः दिये जाते हैं। उनके साथ ही, नीचे दिये हुए वाक्यों में, उदाहरण भी ध्यान देने योग्य हैं। जैसे कर्म कारक में 'कु, ङ्कु' प्रत्यय है, इसलिए तुमकु, आपणंकु (तुमको, आपको); सम्बन्ध कारक में 'र, ङ्कर' प्रत्यय है, इसलिए गाइर, गोलापर (गाय का, गुलाब की); अधिकरण कारक में 'रे, ठारे' आदि प्रत्यय हैं, इसलिए पाठशालारे, कवितारे (पाठशाला में, कविता में) आदि-आदि।

कोई चिह्न नहीं	कर्ता—ने	कु, ङ्कु	कर्म—को
रे, द्वारा, कर्तृक	करण—से	,, ,,	संप्रदान—के लिए
रु, ठारु, अपेक्षा	अपादान—से	र, ङ्कर	सम्बन्ध—का, की, के
रे, ठारे	कधिकरण—में, पर		

तुमकु डाकुछि	तुमको बुलाता है	आपणंकु पढ़ाइबि	आपको पढ़ाऊँगा
छुरीरे	चाकू से	कलमरे	कलम से
काठरे	लकड़ी से	चोरंकु	चोरों के लिए
गाइर दुध	गाय का दूध	ताहाठारु नेबार अछि	उससे लेना है
गछर पत्र	पेड़ का पत्ता	गोलापर कढ़ि	गुलाब की कली
पाठशाळारे छात्रमाने पढ़न्ति	पाठशाला में- विद्यार्थी पढ़ते हैं	मुँ खट उपरे शुए	मैं चारपाई पर सोता हूँ

अव्यय

[कुछ वह अव्यय शब्द जो प्रायः हर समय बोलने में प्रयुक्त होते हैं। नीचे उनके प्रयोग की विधि समझाई गई है। जैसे वाक्य है 'घर के बाहर'। ओड़िया भाषा में सम्बन्ध कारक में 'र', 'ङ्कर' प्रत्यय लगते हैं। इस प्रकार हुआ 'घरर (घर के)'। 'बाहारे' का अर्थ 'बाहर'। 'घरर बाहारे'—घर के बाहर। नीचे दिये हुए अव्ययों और वाक्यों की सहायता से अभ्यास करें।]

तळे	नीचे	उपरे	ऊपर
बाहारे	बाहर	पछे	पीछे
बाद, परे	बाद	साथिरे, संगे	साथ
अनुसारे	अनुसार	पहिले, पूर्बरु	पहले-पूर्व
द्वारा, जारियारे	द्वारा-जरिए	कारणरु, हेतुरु	कारण-मारे
		भितरे, मध्ये	अन्दर-भीतर
आगे,आगरे, सामनारे	आगे-सामने		
पाखरे, निकटरे	पास-निकट	छड़ा	अलावा
ब्यतीत	सिवाय	पुस्तकर सम्बन्धरे	पुस्तक के बारे में
पाइँ, प्रति	वास्ते-लिए	स्थानरे, स्थळे	जगह
अपेक्षा,	अपेक्षा	परि, सदृश	तरह-भाँति
तरफकु, आड़े,आड़कु	ओर-तरफ	काहिं किना, कारण	क्योंकि
सुतरां,		अतएब, सुतरां	अतएव
एणु	इसलिए	तु आ ना	तू मत आ
लेखिकरि देला	लिखकर दिया	उठि	उठकर
शिखिबा		आपणंक पाखरे	आपके पास
उचित	सीखना चाहिए	एहा छड़ा	इसके अलावा
घरर बाहारे	घर के बाहर	मन्दिरर आड़कु	मन्दिर की तरफ

संख्या

ओड़िया	हिन्दी	ओड़िया	हिन्दी
एक	एक	तिरिस	तीस
दुइ	दो	चाळिस	चालीस
तिनि	तीन	पचास	पचास
चारी	चार	षाठिए	साठ
पाँच	पाँच	सतुरी	सत्तर
छ	छः	असी	अस्सी
सात	सात	नबे	नब्बे
आठ	आठ	शहे (शह)	सौ
नअ	नौ	दुइ शह	दो सौ
दश	दस	तिनि शह	तीन सौ
एगार	ग्यारह	चारी शह	चार सौ
बार	बारह	पाँच शह	पाँच सौ
तेर	तेरह	छ शह	छः सौ
चौद	चौदह	सात शह	सात सौ
पन्दर	पन्द्रह	आठ शह	आठ सौ
षोहल	सोलह	नअ शह	नौ सौ
सतर	सत्रह	हजार	हजार
अठर	अठारह	लक्ष	लाख
उणेइश	उन्नीस	कोटि	करोड़
कोड़िए	बीस	दश कोटि	दस करोड़

महीना

चैत्र	चैत्र	बैशाख	वैशाख
ज्येष्ठ	ज्येष्ठ	आषाढ़	आषाढ़
श्रावण	श्रावण	भाद्र, भाद्रव	भाद्रपद (भादों)
आश्विन	आश्विन	कार्तिक	कार्तिक
मार्गशिर	अगहन	पौष	पौष
माघ	माघ	फाल्गुन	फाल्गुन (फागुन)

दिन

रबिबार	रविवार	सोमबार	सोमवार
मंगलबार	मंगलवार	बुधबार	बुधवार
गुरबार	बृहस्पतिवार	शुक्रबार	शुक्रवार
	शनिबार	शनिवार	

[ॐ]

कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज प्रणीत

वैदेहीश-विळास

लिप्यन्तरणकार एवं अनुवादक—

श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम.ए., हिन्दी-ओड़िआ, रा० भा० रत्न,
अध्यापक—हिन्दी विभाग, क्राइस्ट कालेज, कटक

कवि की संक्षिप्त जीवनी

[भञ्ज-साहित्य के श्रेष्ठ व्याख्याता तथा समालोचक, 'कलिंग भारती' अनुष्ठान के संस्थापक स्व० विच्छन्दचरण पट्टनायक द्वारा संपादित 'भञ्ज प्रभा' समालोचना-ग्रन्थ में दिये गये विवरणों के आधार पर:—]

वंश-परिचय

ओड़िशा के गञ्जाम जिलान्तर्गत वन-पर्वत-निर्झर-सुशोभित 'घुमुसर' राज्य के कुलाड़ दुर्ग में महाप्रतापी राजा धनञ्जय भञ्ज के पौत्र तथा नीलकण्ठ भञ्ज के पुत्र, कलिंग-मुकुटमणि कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज ने सन् १६८५ ई० में जन्म ग्रहण कर सन् १७२५ ई० में चालीस वर्ष की आयु में शरीर त्याग किया। कविसम्राट् ने अपने 'रसलेखा' काव्य में ग्रन्थ समाप्ति की सूचना इस प्रकार दी है:—

"दिव्यसिंह गजपति अंक सपत विंशति शेष दिने शेष एहु गीत"।

इससे सिद्ध होता है कि उपेन्द्र भञ्ज ओड़िशा (पुरी) के गजपति राजा दिव्यसिंह देव के राज्यकाल में (अर्थात् सन् १६९२-१७२० में) वर्त्तमान थे।

उपेन्द्र के पितामह धनञ्जय भञ्ज, पण्डित, कवि तथा काव्यरसिक थे। बचपन से ही उनकी अलौकिक प्रतिभा ने पितामह धनञ्जय भञ्ज को आकर्षित किया था। थोड़ी ही उम्र में उपेन्द्र ने वाल्मीकि, कालिदास, श्रीहर्ष, माघ, भोजराज, हनुमान आदि कवियों की कृतियों, एवं विश्वनाथ कविराज, आचार्य दण्डी, मम्मट भट्ट, आनन्दवर्द्धन इत्यादि के अलंकार तथा ध्वनिग्रन्थों का अध्ययन करके संस्कृत साहित्य में अगाध पाण्डित्य अर्जन किया था। आपके पिता नीलकण्ठ जी भी कवि थे। कवि-प्रतिभा बचपन से ही उपेन्द्र के रक्त-मांस में घुल-मिल गई थी। स्व-रचित 'वैदेहीश-विळास' ग्रन्थ के अन्त में आपने अपने वंश का परिचय यों दिया है:—

"वरहिवंशे उद्भव नृप धनञ्जय,
विशिष्टे घुमुसर-अधिप गुणालय।
बेनि अर्थे (दो अर्थों में) से (वे) गणेश बोलि जाण (जानो)।
बन्दन तद्वत ताँक (उनके) नन्दन प्रमाण।
वसुधापति से (वे) नीलकण्ठ नामे ख्यात,
विधानरे (विधान में) मुहिं (मैं ही) ताहाँकर (उनका) ज्येष्ठसुत।
वीरवर पद उपइन्द्र मोर (मेरा) नाम,
बारे-बारे (बार-बार) सेवारे (सेवा से) मनाइँ (मनाकर) सीताराम,
विचित्र कवित्व मार्गे प्रसरिला बुद्धि, (बुद्धि का प्रसार हुआ)
विरचिलि (रचना की) रामायण ए मो (मेरी) बड़ सिद्धि।

राजपरिवारों में सहज व्याप्त अशान्त वातावरण से घुमुसर का राजपरिवार मुक्त न था, किन्तु उपेन्द्र पर उस वातावरण का प्रभाव लेशमात्र न था। उनमें ज भी भोगलिप्सा नहीं थी। वेशभूषा के प्रति उनकी विशेष दृष्टि नहीं थी। के सीताराम के चरणों में अपना तन-मन सौंपकर काव्य-रचना करना उनका एक म ध्येय रहा। छोटे से घुमुसर राज्य में बँधे न रहकर एक अखण्ड प्रतिपत्तिश सारस्वत साम्राज्य के सम्राट् बनने की अभिलाषा ने उनके मन पर अधिकार लिया था। वे चाहते थे कि उनकी काव्य-सरिता देश-विदेशों तक प्रवाहित हो।

देशे-देशे हेउ ख्यात, (ख्यात हो),
मोहु (मुग्ध करे) ए रसिक चित्त,
हर हरि करन्तु (करें) एमन्त (ऐसा) हे। [रसलेखा]

विवाह

उपेन्द्र ने नयागढ़ की राजकन्या से विवाह किया था। किन्तु उनकी अकाल मृत्यु होने पर आपने वाणपुर की राजकन्या से पुनः विवाह किया। वाणपुर-राजकन्या रूपसी, विदुषी तथा अत्यन्त पतिप्राणा थीं। वे उपेन्द्र की उपयुक्त सहधर्मिणी होकर उनके कवि-जीवन को सफल बनाने में सहायक रहीं।

रचित पुस्तकें

कवि ने कुल ७३ काव्य-पुस्तकों की रचना की। उनमें से प्रकाशित पुस्तकों की संख्या नीचे लिखे अनुसार केवल २० है:—

लावण्यवती, वैदेहीशविळास, कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी, प्रेमसुधानिधि, रसिकहारावली, रसलेखा, रसपञ्चक, रामलीलामृत, छान्दभूषण, चौपदीचन्द्र, चौपदीभूषण, चित्रकाव्यबन्धोदय, कलाकउतुक, सुभद्रापरिणय, सुवर्णरेखा, अवनारसतरंग, बजारबोलि, यमकराज-चउतिशा, गीताभिधान और दशपोइ।

अप्रकाशित पुस्तकों की सूची:—त्रैलोक्यमोहिनी, हास्यार्णव, कटपाया, मुक्तावती, व्रजलीला, चन्द्रकला, संगीतकौमुदी, शोभावती, कलावती, रसमञ्जरी, वारमासी, इच्छावती, दुर्गास्तुति, नीलाद्रीश चउतिशा, श्रीकृष्णविहार, गजनिस्तारण, गरुड़गीत, पुरुषोत्तममाहात्म्य इत्यादि।

कवित्व तथा पाण्डित्य

उपेन्द्र भञ्ज ने प्रसिद्ध संस्कृत कवियों का अनुसरण करते हुए उनसे व्यवहृत विभिन्न अलंकारों का कृतित्व के साथ ओड़िआ साहित्य में प्रयोग किया है। संख्यातीत अन्य दुर्लभ साहित्यिक संविधानों को भी अपने विशाल-काव्य-कलेवर के गर्भ में निविष्ट करके आपने विचक्षण पाठकों के चित्त आकर्षित किये हैं। संस्कृत षट्काव्य, पुराणशास्त्र, इतिहास, ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्वेद, तन्त्र, अभिधान, छान्द, अलंकार, व्याकरण, कलाविद्या, कामसूत्र, दण्डनीति, राजनीति, स्मृति, दर्शन, भूगोल आदि विषयों में आप प्रवीण थे। यह उनसे रचित ग्रन्थावली से स्पष्ट प्रतिपादित होता है। विविध रसों का सुन्दर परिपाक, चमत्कार शब्द-योजना तथा विचित्र अलंकारों का समावेश उनकी कविताओं की विशेषताएँ हैं। उनकी रचानाएँ एवं काव्य देवभक्ति, दार्शनिक चिन्ता, नम्रता, नैतिकता, सतीत्त्व-निष्ठा, आदर्श गृहस्थी, आदर्श दाम्पत्य प्रेम, देश-प्रेम, प्राकृतिक सौन्दर्य और सामाजिकता के चित्रों तथा वर्णना-वैचित्र्यों से भरपूर हैं।

कवि के सरस और श्रेष्ठ काव्यों—वैदेहीशबिळास, लावण्यवती और कोटि-ब्रह्माण्डसुन्दरी में कवि-प्रतिभा का अद्वितीय वैशिष्ट्य प्रतिपादित हुआ है ।

भक्त उपेन्द्र

हनुमान, तुलसीदास और कृपासिद्धा बलरामदास की तरह उपेन्द्र ने 'राम तारक मन्त्र' में सिद्धि प्राप्त की थी । यद्यपि आप शिव, दुर्गा, गणपति और सूर्य—इन सबकी पूजा किया करते थे, फिर भी अवतारी रघुनाथ आपके इष्टदेव थे । इसलिए आपने अपने अधिकांश काव्यों में रघुनाथ श्रीरामचन्द्र की वन्दना की है ।

"तरणिकुलर सार। आश्रयरु निरन्तर।
कहे उपइन्द्र भञ्ज मुँ लभिछि शबद-समुद्र पार ।"
[कोटि ब्रह्माण्डसुन्दरी—छान्द-१४]

अनु०—"सूर्यवंश के श्रेष्ठ देव प्रभु रामचन्द्रजी की शरण के फलस्वरूप"—उपेन्द्र भञ्ज कहते हैं—"मैंने शब्द-समुद्र को पार किया है ।"

जनश्रुति है आप द्वादशावधानी थे । आप ई० १७२५ में अप्रकट (ओझल) हो साकेतवासी हुए ।

वैदेहीश-विळास

ऐसा प्रतीत होता है कि उपेन्द्र भञ्ज ने अपनी बीसवें वर्ष की अवस्था में 'वैदेहीश-विळास' महाकाव्य की रचना की थी । इतनी थोड़ी उम्र में 'वैदेहीशविळास' जैसे महाकाव्य की रचना वास्तव में विस्मयकर है । इसके सम्बन्ध में एक जनश्रुति है । धनञ्जय भञ्ज ने रामचरित सम्बन्धी काव्य 'रघुनाथ विळास' की रचना करके उसे अपने पौत्र उपेन्द्र को दिखाया था । उसे पढ़ कर उपेन्द्र ने उत्तर दिया कि इस विषय-वस्तु को ग्रहण करके इससे उच्चकोटि का काव्य लिखा जा सकता है । यह उक्ति धनञ्जय के प्रति उपहासास्पद होने पर भी उन्होंने उपेन्द्र से पूछा, "क्या तुम यह कर सकोगे ?" पितामह के सन्देह तथा अविश्वास का उपयुक्त उत्तर देने के लिए कृत-संकल्प होकर उपेन्द्र घोड़े पर सवार हो आराध्य देव नूआगड़ (नयागढ़) के रघुनाथ जी की शरण लेने गये । नूआगड़ से लौटते समय उन्होंने देखा कि एक साधक श्मशान में शव की पीठ पर बैठा काली का आवाहन कर रहा है । एकाएक काली का आविर्भाव होने पर उनकी दिव्य प्रभा से साधक मूर्च्छित हो गया । यह देख उपेन्द्र तुरन्त घोड़े से

पीठ से नीचे कूद पड़े, स्वयं शव पर बैठ गये और बलि दी। काली ने उनसे वर माँगने को कहा तो उपेन्द्र ने 'अलौकिक कवित्वशक्ति' चाही। देवी 'तथास्तु' कहकर ओझल हो गयीं।

घुमुसर वापस आकर 'ब' ('व' भी इसमें सम्मिलित है) वर्ण को प्रत्येक चरण के आद्य में रखकर उपेन्द्र ने 'वैदेहीशविळास' महाकाव्य की रचना की। इस काम में उन्हें एक वर्ष भी नहीं लगा।

कुछ लोगों का मत है कि नयागढ़ के श्री रघुनाथ जी की कृपा से उपेन्द्र ने 'राम-तारक मन्त्र' में सिद्धि प्राप्त की थी। कवि को इस मन्त्र पर इतना विश्वास हो गया था कि इसी मन्त्र के प्रसाद से वे 'वैदेहीशविळास' जैसे महाकाव्य की रचना थोड़े ही समय में कर सके। इस महाकाव्य के प्रथम छान्द (सर्ग) के तीसरे पद में उन्होंने 'तारक मन्त्र' के बारे में सूचना भी दी है। अपने 'लावण्यवती' काव्य में भी आपने कहा है कि—

"तारक मन्त्र परसादे, मोहर कविपण उदे।"—

(अर्थात् तारक मन्त्र के प्रसाद से मेरे कवित्व का उदय हुआ है।)

'वैदेहीशविळास' महाकाव्य 'ब' (व) आद्य नियम से तो रचित किया गया है। साथ ही, उसमें 'बावन' छान्द (सर्ग) हैं और प्रत्येक छान्द 'बाईस', 'बयालीस' आदि संख्यक पदों में रचित है। एक वर्ष (बावन सप्ताहों) में महाकाव्य की रचना समाप्त करके कवि-मार्त्तण्ड उपेन्द्र ने अपने पितामह धनञ्जय को यह महाकाव्य दिखाया। धनञ्जय इसे देखकर फूले न समाये और उपेन्द्र को गले लगा लिया। उन्होंने आशा की थी कि उपेन्द्र के घुमुसर नरेश होने पर अपना राज्य रामराज्य में परिणत होगा। परन्तु उनकी यह आशा आशा ही में रह गई, क्योंकि उपेन्द्र को राजपद से विराग था।

'वैदेहीशविळास' में कवि ने श्रीरामचन्द्र जी के जन्म से राज्याभिषेक तक रामायण के चित्ताकर्षक प्रसंग बड़ी चारुता से चित्रित किये हैं। अन्यान्य प्रसंग यथा वाल्मीकि के आश्रम में लवकुश का जन्म, वैदेही का पातालगमन, रामचन्द्र जी का बैकुण्ठगमन इत्यादि प्रसंग—"विभंग रस बोलिण न वर्णिलि", [इन प्रसंगों में रसों का विभंग (विशेष भंग) है, इसीलिए इनका वर्णन मैंने नहीं किया;] कहकर कवि ने महाकाव्य का उपसंहार किया है।

महाकाव्य 'वैदेहीशविळास' अमर कवि उपेन्द्र भञ्ज की उत्कल-साहित्य को एक अनूठी देन है। भावों के गाम्भीर्य, रसों के परिपाक, भाषा का माधुर्य, छान्दों के

लालित्य, अद्भुत शब्दों के बिन्यास तथा आलंकारिक शैलियों की दृष्टि से यह प्राचीन (माध्ययुगीन) उत्कल-साहित्य का एक अनमोल रत्न है। ओड़िआ शिलपकला के क्षेत्र में जो गौरव 'कोणार्क मन्दिर' को प्राप्त हुआ है, काव्यकला के क्षेत्र में वही गौरव 'वैदेहीश-विळास' को प्राप्त है। केवल उत्कल-साहित्य में ही क्या, समूचे विश्वसाहित्य में इसका स्थान अत्युच्च है—यह सभी कोई मुक्तकण्ठ से स्वीकार करेंगे। महान् कवि का जन्म उत्कल प्रान्त में न होकर किसी अन्य समुन्नत देश में हुआ होता तो उनकी कीर्ति विश्वव्यापिनी होती। वे जगद्वन्द्य होते।

इस काव्य के छान्द (सर्ग) बहुधा क्लिष्ट हैं। फिर भी इन्होंने देहातों के अर्द्धशिक्षितों तथा अशिक्षितों के मनोराज्य को यहाँ तक अधिकृत कर लिया है कि ग्वालबाल के मुख से भी "बिबलकु आलिंगन" (नबम छान्द) का सहज गान सुनाई पड़ता है।

बैदेहीश-विळास

राग (छन्द)—पाहाड़िआ केदार

बन्दइ दी(दि)न-बान्धव हरि[1] य़े तम-चक्रखण्डनकारी
सदा कमळानन्दविस्तारी स्वभावे ईन, य़े।
बिभु अनन्त - अंकबिहारी कर प्रताप य़ार संचरि
निशाचरङ्क उल्लास हरि पूजे सुमन, य़े।
बइनतेय य़ाहा अग्रते स्थित, य़े।
बइकुण्ठ - पक्षक - लोक तोषित, य़े।
बिकाश अखण्डित - मण्डळे सिह भावरे क्रीड़ित काळे
भवे तरणि होइ मञ्जुळे गिरि उदित, य़े। १।

सरलार्थ—(विष्णु के पक्ष में)—गरीबों के बन्धु जिन भगवान् विष्णु ने चक्र से राहु का शिर छेदन किया था (जो शोक-समूह का अथवा अज्ञता का नाश करते हैं), जो सदा लक्ष्मी के आनन्द-वर्द्धनकारी, जो लक्ष्मीपति याने शोभा के आधार तथा अखिल विश्व के प्रभु हैं, जो अनन्त नाग पर विहार करते हैं, अपने भुजबल से जिन्होंने असुरों के आनन्द का

श्लेष व्या०—दीनबान्धव हरि—गरीबों के बन्धु विष्णु भगवान्, दिनबान्धव हरि—दिवस के बन्धु सूर्य; तमचक्र-खण्डनकारी—राहु का जिन्होंने चक्र से छेदन किया था (अज्ञता या शोक के नाशकारी), अन्धकारों के समूह के नाशकारी; कमळानन्द-विस्तारी—लक्ष्मी अथवा कमल के आनन्द-वर्द्धनकारी; स्वभावे ईन—(ईन-लक्ष्मीपति, शोभा के आधार)—प्रकृतत: प्रभु तथा सूर्य; अनन्तअंकविहारी—शेषदेव (अनन्त नाग) के क्रोड़ में विहार करनेवाले, गगन में विहार करने वाले; कर-प्रताप-भुज-पराक्रम, किरणों का पराक्रम; निशाचरंक—(निशाचरों का)—राक्षसों का, उल्लुओं

---

१ किसी ग्रन्थ का आरम्भ करने के पहले महाकवि, बिना बाधा-विघ्नों के उसकी समाप्ति के लिए मंगलाचरण (आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा) करते हैं। उसी परम्परा के अनुसार कविसम्राट् उपेन्द्र भञ्ज ने 'बैदेहीशविळास' नामक महाकाव्य

हरण किया था, जिनकी पूजा देवता करते हैं, जिनके सम्मुख गरुड़ सदा प्रस्तुत रहते हैं, जो विष्णुभक्त लोगों को तृप्ति देते हैं, जो समग्र ब्रह्माण्ड में विराजित हैं, नृसिंहावतार में जिन्होंने क्रीड़ा की थी, संसाररूपी सागर में जो नौका के समान हैं, जो नीलगिरि (श्रीक्षेत्र) में प्रकाशित हुए हैं, उन्हीं विष्णु भगवान् की मैं वन्दना करता हूँ। (१)

(सूर्य के पक्ष में)—दिवस के बन्धु सूर्य जो अन्धकार समूह का नाश करते हैं, जो सदा कमल का आनन्द बढ़ाते हैं, जो 'ईन' (सूर्य) अपनी किरणों से चारों दिशाओं को उज्वल करते हैं, जिनकी तेज-प्रभा से उल्लुओं का आनन्द दूर होता है, जिनकी पूजा पण्डित करते हैं, जिनके सम्मुख अरुण सदा विद्यमान हैं, इन्द्र जिनके सहायक हैं, जिनके दर्शन से लोग सन्तोष लाभ करते हैं, जो पूर्ण गोलाकार रूप में विद्यमान हैं, सिंह राशि में जो एकदा क्रीड़ा करते हैं, जो प्रत्यह उदयाचल पर प्रकाशित होते हैं, उन्हीं दिनमणि सूर्यदेव की मैं वन्दना करता हूँ। (१)

का; सुमन—देवता, पण्डित; वइनतेय—(वैनतेय)—गरुड़, अरुण; याहा अग्रते—जिनके सम्मुख; वइकुण्ठ-पक्षक लोक—विष्णुभक्त लोक, इन्द्र जिनके सहायक; तोषित—आनन्ददायक। अखण्डित मण्डलें—समूचे विश्व में, पूर्ण गोलाकार रूप में; सिंहभावरे—नृसिंह अवतार में, सिंह राशि में; तरणी—नौका, तरणि—सूर्य; गिरि उदित—नीलगिरि (पुरुषोत्तमधाम पुरी) में प्रकाशित, उदयगिरि पर प्रकाशित। (१)

बहित ग़ेहु रोहितमूर्ति श्रु(सृ)ति-रञ्जनकारक अति,
हंस होइण ग़ाहा प्रशस्ति अछि प्रवर्ति ग़े।

सरलार्थ—(विष्णु के पक्ष में)—जिन विष्णु ने रोहित मत्स्य का रूप धारण किया था, वेदों में परमात्मा के नाम से जिन्होंने ख्याति प्राप्त की है, जो विराट् रूपवान हैं, जिनके दर्शन प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण चिन्तन करते हैं, जो ब्रह्मा से श्रेष्ठ (अथवा कन्दर्प से अधिक रूपवान्)

श्लेष व्या०—रोहित मूर्त्ति—रोहित मत्स्य का स्वरूप, रक्तवर्ण; श्रुतिरंजनकारक—वेदों के मण्डनकारी, सृतिरंजनकारक—मार्ग के शोभा-वर्द्धक; हंस—परमात्मा,

---

का श्रीगणेश करने के पूर्व श्लेष में विष्णु तथा सूर्य का नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया है। प्रथम तथा द्वितीय पद्य में विष्णु और सूर्य दोनो ही की वन्दना उपलब्ध है। दोनो की वन्दना में वे ही शब्द विष्णु तथा सूर्य के प्रति भिन्न-भिन्न अर्थ देने लगते हैं। विद्वान् पाठकों के मनोरञ्जनार्थ श्लेष पदों एवं अन्य देशज तथा संस्कृत शब्दों की व्याख्या आवश्यकतानुसार पद्य के नीचे दी जारही है।

बिराज रूप य़ाहार पुणि द्विजचक्र या दर्शन गुणि,
आत्मभूपर संसारे भणि कि शुभ्रकीर्त्ति य़े।
बुधजनक - शिरभूषण य़ेहि, य़े।
विनयरु ये आन वाणी न कहि, य़े।
बळि याहाकु सर्वदा नाहिं द्वी (द्वि) प प्रसन्न करता सेहि,
पुनत धर्मस्वरूपग्राही कि स्तुति तहिं, य़े। २।

हैं, जिनकी कीर्त्तियाँ शुभ्र हैं, महादेव शंकर जी जिनसे विना विनय के शब्द नहीं बोलते, ब्रह्माण्ड में जिनसे बढ़कर दूसरा कोई बलवान् नहीं है, जिन्होंने (ग्राह के मुख से रक्षा करके) गज को आनन्द दिया, जो धर्म पर स्थित जन के रक्षक हैं—ऐसे विष्णु भगवान् की स्तुति किन शब्दों में करूँ ? (२)

(सूर्य के पक्ष में)—जो सूर्य रक्तवर्ण मूर्ति धारण करते हैं, जो मार्ग की शोभा बढ़ाते हैं, जिनका नाम हंस है, जिनके विराजमान (प्रकाशमान) रूप के दर्शन के लिए चक्रवाक सर्वदा उत्कण्ठित रहते हैं, जो श्रेष्ठ ब्रह्म के नाम से ख्यात हैं, जिनकी किरणें बड़ी शुभ्र हैं, पण्डित लोग जिनसे सदा विनय करते हैं, जिनसे बढ़कर तेजस्वी और कोई नहीं है, जो सप्तद्वीपों के प्रकाशक (उज्वलकर्त्ता) हैं, फिर जो 'धर्म' नाम से अभिहित हैं, ऐसे सूर्यदेव की स्तुति किस प्रकार करूँ ? (२)

सूर्य; विराज रूप—विराट रूप, विराजमान रूप; द्विजचक्र—ब्राह्मणसमूह, पक्षी चक्रवाक; आतमभू—ब्रह्मा, कन्दर्प; पर—श्रेष्ठ; बुधजनक (चन्द्र)—शिरभूषण—चन्द्र जिनके शिर पर भूषित अर्थात् महादेव, बुधजन—पण्डित व्यक्ति, शिरभूषण—शिरोमणि; द्विप—हाथी, द्वीप—सप्तद्वीप; धर्मस्वरूपग्राही—धार्मिक के रक्षक, जो धर्म नाम से अभिहित। (२)

बिष्टरश्रवा ब्रह्माण्डेश्वर परम पद भजिला नर,
लभे, ए घेनि ग्रन्थ आद्यर भावित तांकु, य़े।

सरलार्थ—जगत्कर्ता विष्णु को भजने वाला व्यक्ति बैकुण्ठ लाभ करता है। और सूर्य देवता से सूर्यवंश का उद्भव हुआ है। इसलिए विष्णु तथा सूर्यदेव की स्तुतियाँ करके ग्रन्थ का श्रीगणेश करूँगा—इसी विचार से दोनों देवों की स्तुतियाँ की हैं। हे बुद्धिमान् पण्डितो ! मेरा

विष्टरश्रवा—विष्णु; परमपद—बैकुण्ठ, भजिला—भजने वाला; लभे—प्राप्त करता है; ए घेनि—यह लेकर (इस लिए); आद्यर—आरम्भ में; भावित तांकु—

वंश याहारठारु उत्पत्ति कवि विचारे से देवे स्तुति,
विधान करि अति सुमति आण मनकु, ये।
बर्ण अभंग-सभंगरे ए श्लेष, ये।
बुझ स्थान-स्थानके करि प्रकाश, ये।
बळाइ चित्त अनवरत भाग्ये ग्रहण तारक मन्त्र,
सीता-श्रीराम-चरित-गीत कृते लाळस, ये। ३।

अभिप्राय मन में लाओ। वर्णों के, अभंग तथा सभंग, दो–अर्थबोधक श्लेष अलंकारों में मैंने ये स्तुतियाँ प्रकाश कीं। हमेशा कविता लिखने की ओर मैंने रुचि बढ़ाई थी। सौभाग्य से 'राम तारक मन्त्र' ग्रहण किया। उसी मन्त्र के प्रसाद से मुझ में कवित्व की स्फूर्ति हुई। इसलिए सीता-श्रीराम-चरित-संबन्धी गीत लिखने की मन में अभिलाषा हुई। (३)

उनको स्तुति करता हूँ; याहारु ठारु—जिनसे; से देवे—उन देव को; सुमति—बुद्धिमान; आण—लाओ; ए-यह; बुझ-समझो; बलाइ चित्त—मन में अभिलाषा करना; (३)

बाल्मीकि, व्यास कवि यहिंरे महाकाव्य के पुराण करे,
महानाटक बातसुतरे हेले रचिता, ये।
बिहिले काव्य ये कालिदासे चम्पू-रचना भोज नरेशे
कृपासिद्धा ए गीत प्रकाशे छाड़िलि चिन्ता ये।
बिवेकहिं उदय एमन्त ध्यायि, ये।
व्योमे तारका येबे झलकुथाइ, ये।
बिभावरीरे ज्योतिरिंगण— गण ज्योतिकि देखान्ति पुण
सुजने सावधानरे शुण छान्द रचइ ये। ४।

सरलार्थ—जिन राम-सीता के वृत्तान्त पर वाल्मीक 'रामायण', व्यासदेव 'अध्यात्म रामायण', हनुमान् 'महानाटक', कालिदास 'रघुवंश' भोजराज 'चम्पू', सिद्धकवि बलराम 'दाण्डि रामायण' आदि ग्रन्थों की रचना कर चुके है, मैं उनके बारे में और क्या अधिक लिखूँ, यह सोचकर मैं सकुचा रहा था। परन्तु यह ध्यान में लाकर कि रात में आकाश पर तारों के चमकने पर भी जुगनू सब अपनी-अपनी ज्योति दिखाते हैं, मुझमें विवेक का

यहिंरे—जिसमें; के—कोई; करै—करते हैं; हेले—हुए; बिहिले-विधान किया;

उदय हुआ। मैंने संकोच त्याग कर यह ग्रन्थ रचना करने की ओर ध्यान दिया। हे सुजनो ! सावधानी से सुनो। (४)

येबे—जब; झलकुथाइ—झलकते हैं; पुण—फिर शुण—सुनो; बावसुत—हनुमान (कवि); (४)

बिद्युतकेश वंशरे जात, सुमाळी माळी ये माल्यवन्त,
स्वर्ग लुण्ठने अहि-अहित[1] धिआन करि, ग्रे।
बिधु-समरे[1] ज्योति ज्वळित विधु-समरे[2] हेले आगत
से आरोहित अहि-अहित[2] गदाब्ज धरि, ग्रे।
बजाइण शंखारि[1] करेण घात, ग्रे।
बध कले शंखारि[2] द्वितीय भ्रात, ग्रे।
वड़भी लभि पाताळे लुचि लंका[1] बड़भिपुरकु मुञ्चि
लंका[2] ये दण्डपाणिरे रचि भय ग्रेमन्त, ग्रे। ५।

सरलार्थ—विद्युत्केश नामक राक्षसवंश में सुमाली, माली और माल्यवन्त के नामों से तीन पुत्र पैदा हुए थे। उनके स्वर्ग लूटने पर इन्द्र ने विष्णु का ध्यान किया। ज्योत्स्नासम प्रभामय विष्णु इससे क्रुद्ध हो अपने आयुध गदा-पद्म धारण किये गरुड़ पर आसीन होकर देवासुर-समर में आविर्भूत हुए। उन्होंने चक्राघात से माली और माल्यवन्त—दो राक्षसों का निधन करके शंखनाद किया। यह देखकर सुमाली डर के मारे लंकागढ़ का त्याग कर पाताल में जा छिपा, जैसे विटपी स्त्री राजभय से छिपती है। (५)

हेले—हुए; से—वे (उन्होंने); धरि—धारण करके; बजाइण—बजाकर; कले—किया; लुचि—लुक (छिप) कर; मुञ्चि—छोड़ कर; येमन्त—जैसा; अहि-अहित[1]—वृत्रासुर का अहित करने वाले इन्द्र; विधु समरे[1]—चन्द्र के समान; विधु समरे[2]—देव-युद्ध में; अहि-अहित[2]—(अहि नाम सर्प उसका अहित करने वाला) गरुड़; गदाब्ज—गदा-पद्म; शंखारि[1]—शंख—चक्र; शंखारि[2]—शंख राक्षस के शत्रु (विष्णु); वड़भी—बड़ा भय; बड़भिपुर—चन्द्रशाला गृह; लंका[1]—लंकापुरी; लंका[2]—विटपी स्त्री; (५)

बाहार पुण्यजने[1] होइले विहार पुण्यजने[2] विहिले
रञ्जन पुण्यजन[3] कुबेरे से दीप्तिमान, ग्रे।

सरलार्थ—राक्षस लोग लंकापुर से निकल गये, उत्तम लोगों ने वहाँ आकर विहार किया। यक्षों के साथ कुबेर के वहाँ रहने पर लंकानगर

वास नगर पाश नगर नगरतळे करि सत्वर
जगत - तात - सुत कुमर कले से स्थान, ये।
बहु समय अन्ते एहि प्रकारे, ये।
वार्त्ता पाइ सुमाळी एमान चारे, ये।
विश्रवा ऋषिर सन्निधिकि नेला दूहिता रसनिधिकि
शोभारे करे से धिकि धिकि नारीमातरे, ये। ६।

ने अशेष शोभा धारण की। नगर के पास सुवल पर्वत के नीचे एक वृक्ष के मूल को अच्छा स्थान समझ कर विश्रवा ऋषि ने वहाँ अपना आश्रम बनाया। कुछ दिनों के बाद सुमाली, दूतों से इन समाचारों का पता लगा कर श्रृंगार रस की निधि अपनी दुहिता (निकषा) को लिये विश्रवा ऋषि के यहाँ पहुँचा। वह कन्या अपनी शोभा से नारी मात्र को धिक्कारती थी। (६)

बाहार होइले—निकल गये; पुण्य जने[1]—राक्षस लोग; पुण्यजने[2]—उत्तम जन; पुण्यजन[3]—यक्षगण; वासनगर—लंकापुर; पाशनगर—पास के नग (पर्वत) के (लोग); नगर तले—वृक्ष के मूल में; जगत-तात-सुत-कुमर—जगत्पिता ब्रह्मा के सुवन पुलस्त्य के सुत विश्रवा (रावण के पिता); नेला—लिया; (६)

बांके अनाइँ अंके पकाइ से पंकेरुह शरकु नेइ
शंके मदन आतंके तहिं मुनि उत्तम। ये।
बोले सुन्दरी, कोळे मो बस तुले मज्जि तो होइबि तोष
भुले तो रूपे मोर मानस प्रकाश प्रेम, रे।
बामा ओळगि सनमन कराइ, ये।
बह्नि साक्षिरे विभा भाव बढ़ाइ, ये।

सरलार्थ—उस कन्या (निकषा) ने टेढ़ी नजर से ऋषि की ओर देखा और कन्दर्प के शरतुल्य अपने पद्म-नेत्रों से उनकी ओर कटाक्षपात किया। मुनिश्रेष्ठ विश्रवा कामदेव के भय से भीत हो बोले, "हे सुन्दरि ! मेरी गोद में बैठो। तुम्हारे रूप से मेरा मन विभोर हो गया है। प्रेम प्रकाश करो।" वामा ने प्रणामपूर्वक अपनी सम्मति प्रकट की। अग्नि देवता की साक्षी में दोनों का विवाह संपन्न हुआ। सन्ध्या के समय दोनों सुरति-रस में मग्न हुए। निकषा तो राक्षसी ही थी। फलस्वरूप, उसके

बेगे सुरत रत सन्ध्यारे सन्ध्यामट्टी से तार गर्भरे
जात होइले रक्ष शरीरे सुततनयी, ग्रे । ७ ।

गर्भ से ठीक समय पर राक्षस-शरीरों में पुत्रों और कन्या का जन्म हुआ। (७)

बाँके अनाइँ—कटाक्ष किया; पकाइ—डाल कर; नेइ—लेकर; कोले—गोद में; ओलगि—प्रणाम करके; सन्ध्यामट्टी—राक्षसी; (७)

बिंशतिभुज दशाननरे कि दशा देब देव किन्नरे,
नर नागरे धरणी थरे हेउँ पतन, ग्रे ।
बिकट रूप प्रकट अति रकत परा व्यकत कान्ति
घटण घट-सदृश श्रुति भैरव स्वन, ग्रे ।
बधिरता निकट शुणिला जन, ग्रे ।
बिगत ग्रे भीषणे तिनि नन्दन, ग्रे ।
बोलाइले से दशवदन कुम्भ-श्रवण ग्रे विभीषण
नन्दिनी सूर्पणखार नख सूर्प समान ग्रे । ८ ।

सरलार्थ—निकषा के गर्भ से सर्वप्रथम बीस भुजा तथा दशमुख वाला एक पुत्र भूमिष्ठ होते ही, 'वह देव, किन्नर, नर तथा नाग लोगों की क्या गति करेगा' ऐसा सोचकर धरणी काँप उठी। उसके बाद अति भयंकर रूप, रक्तवर्ण-कान्ति तथा घट सदृश कान धारण किये द्वितीय पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके गर्जन से निकट के लोग बहरे हो गये। एक तृतीय पुत्र, जो भय-रहित (सुन्दर) था, पैदा हुआ। वे क्रमशः दशानन, कुम्भकर्ण तथा विभीषण के नाम से विख्यात हुए। जो कन्या उत्पन्न हुई, उसके नाखून सूप जैसे थे, इसलिए उसका नाम सूर्पनखा पड़ा। (८)

देब—देगा; थरे—काँपने लगी; शुणिला जन—सुननेवाले लोग; (८)

वृद्धि ग्रतन दिनकु दिनु, गिरिसमरे दिशिला तनु,
गिरीषमरे ए अनुमानु नुहइ आन, ग्रे ।
विशाळ महाशाळ कि कर, सानु समाने उन्नत शिर,
कृशानुपरि तेजनिकर ज्वळित घेन, ग्रे ।

सरलार्थ—लड़के यत्न से दिनों दिन बढ़ने लगे। उनके शरीर ग्रीष्म ऋतु के पर्वतों की तरह दीखने लगे। यह अनुमान से भिन्न नहीं। उनके हाथ महाशालवृक्षों की तरह विशाल हुए, शिरों ने पर्वतों की चोटियों

बिद्यमान कोटर तथा लोचन, ये ।
बर्द्धमान करता जीव शोचन, ये ।
बुलिले पुरे पुरे स्वच्छरे मातिले नाना द्रव्य भक्ष रे
गला द्वादश सम्बत्सररे ये कुम्भकर्ण, ये । ९ ।

तथा नेत्रों ने गुफाओं का आकार धारण किया और शरीरों का तेज आग के समान चमक उठा। उन्होंने सब प्राणियों का शोक बढ़ाया। मन-माने ढंग से चारों ओर घूमकर नाना द्रव्य भक्षण किये। इसी तरह बारह वर्ष बीत गये; उसके बाद कुम्भकर्ण ने—(९)

दिशिला—दीखे; नुहइ—नहीं है; आन—दूसरा; सानु—सींग; घेन-ग्रहण करो; कोटर—गुहा; बुलिके—घूमे; मातिले—मदमाते; गला—बीत गया; (९)

बहुत जनजीवन नेइ उत्तरकुरु - प्रदेशे याइ
उत्तर क्रूरतर न सहि इन्द्रे न मानि, ये ।
बज्रघातकु मणि इतर उत्पाटि दन्त ऐरावतर
प्रहारे मोह सुरईश्वर पळाइ घेनि, ये ।
विभीषण पक्षरे द्वन्द्व रचित, ये ।
बप्ताश्वशुर - स्थाने दशास्य गत, ये ।
बिरोजामण्डल रे तपस्या जगज्जय रे करि मनीषा
अशनहीने दिवस निशा काळ बञ्चित, ये । १० ।

सरलार्थ—[इसके अनन्तर कुम्भकर्ण ने] मार्ग पर बहुत जनों तथा प्राणियों का विनाश करके स्वर्ग में जाकर नाना उपद्रव मचाये। इन्द्र को न मानकर उनसे कटु शब्द कहे। इन्द्र के बज्र-प्रहार को तुच्छ समझा और ऐरावत हाथी के दाँतों को उखाड़कर उनसे इन्द्र को पीटा; जिससे इन्द्र मूर्च्छित हो गये। ऐरावत उन्हें ले भागा। विभीषण ने यक्षलोक में युद्ध छेड़ दिया। रावण पातालपुर की विजय के लिए गया। इस प्रकार तीनों भाई तीन पुरों में युद्ध समाप्त करके जगज्जय करने की इच्छा से विरजादेवी के पीठ-स्थान में निराहार दिन-रात तपस्या करने लगे। (१०)

नेइ—लेकर; उत्तर कुरु—स्वर्ग; याइ—(जाइ) जाकर; मणि—समझ कर; सुरईश्वर—इन्द्र; पलाइ घेनि—ग्रहण करके (लेकर) भाग गया; बप्ताश्वशुर—पिता विश्रवा की ससुराल, सुमाली का वासस्थान (पाताल); दशास्य—रावण; मनीषा—इच्छा; (१०)

बिखन भाल लेखनवर्ण मुण्ड प्रचण्डानळे दहन
करिण कला ज्येष्ठ पठन कष्ट अत्यन्त, ये ।
बल्लकी रचि भुज मूर्द्धारे से दण्ड तुम्बी भावे श्रद्धारे
धमनी गुण करि वेधारे विनयी गीत, ये ।
बाउँ गाउँ होइले आसि प्रसन्न, ये ।
बर कामना पूर्णे कले प्रदान, ये ।
बर्त्तिबु युग छपन गण्डा बरणी हेव ब्रह्माण्डे खण्डा
सीताहरण निश्चें मरण कारण जाण । रे । ११ ।

सरलार्थ—ज्येष्ठ रावण ने अपने शिरों को प्रचण्ड अनल में आहुति देते समय अपने ललाट-पट पर विधि-अंकित अक्षरों को बड़े कष्ट के साथ पढ़ा । [अपने भाग्य में अच्छाई नहीं—यह जान कर] उसने अपनी एक भुजा को वीणा का डंडा, मुण्ड को तुम्बी तथा शिराओं (नाड़ियों) को तार बनाकर उसी वीणा से विनय के साथ ब्रह्मा जी का स्तव-गान किया । प्रसन्न हो ब्रह्मा ने आकर कहा, "तू ५६ (छप्पन) गण्डा (अर्थात् ४×५६) युगों तक जीवित रहेगा । तेरी तलवार सारे जगत में पूजा पायेगी । (अर्थात् तू जगज्जयी होगा ।) परन्तु सीता का हरण तेरी मौत का कारण होगा—यह याद रख ।" (११)

बिखन—विधाता; बल्लकी—वीणा; वेधारे-ब्रह्मा के प्रति; बाउँ गाउँ—बजाने तथा गाने से; बर्त्तिबु—(तू) जीवित रहेगा; गण्डा—चार संख्या का समूह; बरणी हेब—वरणीय (पूजनीय); खण्डा—खड्ग; (११)

बेभारे सीता बहु योषिता ये होइथिब जनकसुता
बहुत राम परकाशिता ये दाशरथि, ये ।
बाग्देवी आसि बसिले गले कुम्भकर्णर वरद काले
निद्रा मुँ यिबि बोलि चपळे मागिला तथि, ये ।

सरलार्थ—संसार में सीता नाम की बहुत स्त्रियाँ हो सकती हैं तथा राम नाम के बहुत व्यक्ति भी हो सकते हैं । इसलिए रावण का सन्देह दूर करने के लिए ब्रह्मा जी ने बताया, "जो सीता जनक की कन्या होंगी, उन्हीं का हरण करने से दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्र तेरा वध करेंगे । कुम्भकर्ण को वर देते समय सरस्वती आकर उसके कण्ठ में बैठीं । अतः उसने शीघ्रता से "मैं सो रहूँगा" यह वर माँग लिया । यह सुनकर ब्रह्मा

बत्सरक न पूरु उठिबु ये़बे, रे।
बध अवश्य हेब तोहर तेबे, रे।
विष्णु - भकत होइ अमर जगत मध्ये कर बिहार
गत पद्मज देइ ए वर सानुजे जबे, ये़। १२।

ने वरदान दिया, "एक वर्ष के पूर्ण होने के पूर्व यदि तू जगेगा, तो तेरा विनाश अवश्य होगा।" "विष्णुभक्त व अमर हो, जगत में तू विहार कर"—यह वरदान छोटे भाई विभीषण को देकर ब्रह्मा जी जल्दी वहाँ से चले गये। (१२)

बेभारे—जगत में; योषिता—स्त्रियाँ; निद्रा मुँ यिबि—मैं सोने को जाऊँगा; वत्सरक.........तोहर तेबे—एक वर्ष पूर्ण होने से पूर्व (निद्रा से) यदि तू उठेगा तो तेरा वध अवश्य होगा; पद्मज—ब्रह्मा; सानुजे—विभीषण को; (१२)

बाहुड़ि तहुँ पाताळे राजि निकषात्मज पुञ्जकु साजि
बेढ़िले लंका कुबेर तेजि गला से पुर, ये़।
विमाने[1] नेला सर्व सम्पत्ति वि-माने[2] ये़था गगने गति
से मनोरथ रथ प्रापति इच्छि समर, ये़।
विश्वे उत्कट प्रभा प्रकट करि, ये़।
बिधुन्तुद विधुकु ग्रासिला परि, ये़।
बिश्वकेतुरे होइ अदम्भा शोभा-आरम्भा रम्भा सुरम्भा-
उरुकु हरि होइला विभा मयकुमारी, ये़। १३।

सरलार्थ—वे तीन भाई ब्रह्मा जी से वर प्राप्त करने के बाद वहाँ से लौट पातालपुर में प्रविष्ट हुए। असुरों को इक्ट्ठा करके लंका नगरी पर चढ़ाई की। कुवेर पुष्पक यान पर बैठ सारी संपत्ति साथ लिये लंकापुरी छोड़ गये, जैसे चिड़ियाँ आसमान पर उड़ जाती हैं। रावण मनचाही गति करने वाले पुष्पक विमान को प्राप्त करने के उद्देश्य से कुवेर से लड़ने के लिए गया और बलात् उनसे विमान छीन लाया। भयंकर तेज प्रकाश करके सारे संसार को उसने ग्रस डाला (जीत लिया) जैसे राहु चन्द्रमा को ग्रसता है। कन्दर्प-पीड़ा से कातर हो उसने परमासुन्दरी

बाहुड़ि (बहुरि)—लौट कर; वहुँ—वहाँ से; निकषात्मज पुञ्जकु—असुर गण को; बेढ़िले—घेर लिया; बिमाने[1]—पुष्पक विमान में; वि-मान[2]—पक्षी के समान; विधुन्तुद—राहु; विश्वकेतु—कन्दर्प; अदम्भा—दम्भहीन, कातर, शोभा आरम्भा—

रम्भोरुविशिष्टा रम्भा अप्सरा को हरण किया। फिर रावण ने मयदैत्य-कन्या मन्दोदरी से विवाह किया। (१३)

सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी; सुरम्भा उरुकु—उत्तम कदली वृक्ष के समान जंघा वाली; मयकुमारी—मय दानव की कन्या मन्दोदरी; बिभा—विवाह; (१३)

वृषसदृश सुरभिआळी गोष्ठ कोष्ठिरे कला से केळि
प्रजापतिक समाने झळि अनेक सुत, ये।
बर्णिबा किस ज्येष्ठकुमार जात रड़िकि शुणि कुमार
छाड़ि से मेघनाद उपर पड़ि अचेत, ये।
बळे मेघनादरु ताहार स्वन, ये।
बहे से मेघनाद नाम प्रधान, ये।
वन-वेष्टित स्थानरे रहि सिंह-शार्द्दूळ बळिष्ठे होइ,
वइरि-मृग-पिशित ध्यायि आउ नन्दन, ये। १४।

सरलार्थ—रावण ने गृह में सुन्दरी स्त्रियों से केलि (रति) की, जैसे साँड गायों के गोठ में केलि करता है। उसी हेतु प्रजापति (ब्रह्मा) के समान दीप्तिमान् पुत्र सब पैदा हुए। उन पुत्रों की कथा का क्या वर्णन करें! ज्येष्ठ पुत्र के जन्म-समय के गर्जन को सुनकर कुमार (कार्त्तिकेय) मोर की पीठ पर से नीचे गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये। उसका गर्जन मेघ की ध्वनि से बढ़ जाने से उसका प्रधान नाम मेघनाद हुआ। अन्य पुत्र सब सिंह-व्याघ्रों की तरह बलवान् हुए और शत्रु-रूपी मृगों के रक्त-मांस का ध्यान करके जल से घिरी लंकापुरी में रहे। (सिंह-व्याघ्र, मृग-मांस खाने की आशा से वन अर्थात् जंगल में रहते हैं—यह स्वाभाविक है।) (१४)

कला से केलि—उसने केलि की; गोष्ठरे—समूह में; कोष्ठिरे—गृह में; झळि—दीप्तिमान; रड़िकि—गर्जन को; वनवेष्टित—जल (या जंगल) से घिरी हुई; आउ—और; (१४)

वाम कररे होइण वाम वामदेवर गिरि कुसुम,
परि उत्पाटि धरणे क्षम हेबाकाळर, ये।

सरलार्थ—रावण प्रतिकूल होकर जब अपने बायें हाथ से शिवजी के पर्वत कैलास को फूल के समान उखाड़ कर पकड़ने को उद्यत हुआ, तब भय से महादेव ने रावण से अपनी तुलना करके कहा, "मैं ईश्वर हूँ, यह

बाहार दरवशे ए स्वर ईश्वरठारु रावणेश्वर,
देखिले पञ्चद्विगुण शिर से बहिबार, ये।
विशेषत देखिले ईक्षण कर, ये।
बिळासकु दैत्यर स्वर्णनगर, ये।
बिलोकि रौप्यनगरे स्थिति उपुजि याइ ए ऊणा भीति
भोगत बेनिजने विभूति आन प्रकार, ये। १५।

रावणेश्वर है; मेरे पाँच वदन (मुख) हैं, इसके दस वदन हैं; मेरे पन्द्रह आँखें हैं, इसके बीस; मेरे दस हाथ हैं, पर इसके बीस; मेरा वासस्थान रौप्य-पर्वत (कैलास) है, पर इसका सुवर्णमय लंकापुर। हम दोनों विभूति का भोग करते हैं, परन्तु भिन्न प्रकार याने अर्थों में—मेरा भोग विभूति अर्थात् भस्म है, उसका भोग विभूति अर्थात् विशेष ऐश्वर्य है। अतएव मैं उससे सब गुणों में हीन हूँ।" (उनके मन में यह भय उत्पन्न हुआ।) (१५)

कुसुम परि—फूल के समान; दरवशे—भय के कारण; ईश्वरठारु—महादेव से; बेनि जने—दोनो जनों को; विभूति—भस्म तथा विशेष ऐश्वर्य; (१५)

बारिराशि ए तरळ-तर अधीर थिला अति मातर,
याहा प्रतापे होइ कातर से तरतर, ये।
व्याकुळ जात पाञ्च-पाञ्चर आम्भे स्वभावे एहा आहार,
बेनि घेनिले हृदभितर एहि विचार, ये।
बाहि न पुण याइ मीनंकु खाइ, ये।
बड़ विंशतिभुज बहिबा चाहिं, ये।
बन्धुभावरे से शान्ति कान्ति नामे समर्पि दिव्य युवती
स्वनाम कले कोषे ता स्थिति रत्नकु देइ, ये। १६।

सरलार्थ—समुद्र सब अतिशय तरल हैं, इसलिए पहले उनकी लहरें कुछ चञ्चल थीं। परन्तु अब रावण के प्रताप से अत्यन्त भीत होने के कारण वे सब चञ्चलतर हुई हैं। उनमें से पाँच समुद्रों (इक्षु, सुरा, सर्पि, दधि और दुग्ध) ने सोचा, "हम स्वभावतः इसके भक्ष्य पदार्थ हैं, वह (रावण) हम सबको कहीं खा न जाय ?" यह सोचकर उनको भय हुआ। दोनों समुद्रों (लवण व जल) ने मन में विचार किया, "यह (रावण) मछलियों को खाने की आशा से हमारे जल को उछालकर कहीं हमको सुखा न दे !" ऐसा विचार करके सबने शान्ति व कान्ति नाम की

दो परमासुन्दरी कन्याओं को उसे समर्पण किया और बहुत रत्न दान करके उसके भण्डार को अपने नामानुरूप अभिहित किया। (अर्थात् उसके भण्डार को 'रत्नाकर' नाम दिया।) (१६)

वारिराशि—समुद्र; थिला—था (थे); तरतर—चंचलतर; आम्भे—हम; एहा—इसके; चाहिँ—देखकर; (१६)

बहु कृपाण साधन करे छेदन शंका जम्बु प्लक्षरे,
आरम्भ होमकर्म कुशरे वहन भीति, ये।
बाटुळि धरु क्रौञ्च चमके भोजनकाळे भयद शाके
शयने तूळीकरणे शंके शाल्मळी निति, ये।
बिहुँ देवपूजन पुष्करे भय, ये।
बळे उपाड़ि नेब होए उदय, ये।
बिभोग कर प्रतापे कर करइ हेळे प्रजा आकार
पृथ्वीमण्डळ राजानिकर महादुर्ज्जय, ये। १७।

सरलार्थ—अस्त्रसाधना के लिए (रावण के) तलवार पकड़ते ही जम्बुद्वीप तथा प्लक्ष द्वीपों ने शंका की कि कहीं यह हमको जामुन व पीपल के पेड़ समझकर काट न दे। उसके होम अनुष्ठानारम्भ को देखकर कुश द्वीप को भय हुआ—कहीं मुझे कुश समझकर यह होम कार्य में लगा न दे। लक्ष्यभेद सीखते समय गोला पकड़ने से क्रौञ्च द्वीप ने भय से चौंककर सोचा—कहीं मुझे बगुला समझकर यह मार न दे। उसके भोजन के समय शाकद्वीप को भय हुआ—कहीं रावण मुझे साग समझकर खा न जाय। शयन के समय शाल्मली द्वीप ने सशंक सोचा—कहीं मुझे रावण सेमल की रुई समझ कर सेज न बना ले। देवपूजा के समय पुष्कर द्वीप को भय हुआ कहीं मुझे वह कमल समझकर न उखाड़ ले। भूमण्डल में जितने भी राजा थे, उन सबको प्रजा बनाकर अपने भुजबल से रावण ने उनसे राजस्व वसूल किया और इस प्रकार विशेष भोग किया। वह सब से अजेय हो कर सुख भोगने लगा। (१७)

बहुँ—वहन करते हो; बाटुळि—(वर्त्तुल शब्दज) धनुष पर रख कर मारा जाने वाला लोहे का गोला; चमके—चौंक उठा;

श्लेष—जम्बु, प्लक्ष, कुश, क्रौञ्च, शाक, शाल्मली, पुष्कर आदि, द्वीपों के नाम हैं। इनके श्लेष-अर्थ क्रमशः जामुन, पीपल, कुशा, बगुला, शाक (साग), सेम्हर (की रुई) तथा कमल हैं। सरलार्थ देखिए। (१७)

बन्दी बळीर फेड़ने य़ार भरसाकृत रसातळर
कोटिए सिंह बळ बाळिर धरणे इच्छि, य़े ।
बिकळभाव नोहिला लव पाइ निविड़ भिड़ प्राभव,
केमन्त मल्ल कोविदे भाव तुल कि अछि, य़े ।
बाहुँ, सहस्रभुजे होइला बादी, य़े ।
बहिबारु पालटि नर्मदा नदी, य़े ।
बन्धने पड़ि खड्गे न छिड़ि, अनळय़ोगे न गला पोड़ि,
जळे न बुड़ि संशय छाड़ि वरे प्रमोदि, य़े । १८ ।

सरलार्थ—उसके बाद रावण ने साहसपूर्वक पाताल में जाकर वामन द्वारा बंदी बनाये हुए बलि को मुक्त कराने के लिए बहुत चेष्टा की। फिर करोड़ सिंहों के बलवाले महावीर बालि को पकड़ने को गया। उससे बहुत पराभव पाने पर भी उसे तनिक भी कष्ट का अनुभव नहीं हुआ। इस प्रकार वह पृथिवी में कैसा अद्वितीय वीर था; हे पण्डितो! मन में विचार करो तो। सहस्रार्जुन के अपनी पत्नियों के साथ नर्मदा नदी में जलक्रीड़ा करते समय, नदी की गति रुद्ध होने पर, रावण ने उससे भी दुश्मनी की। सहस्रार्जुन ने इससे क्रुद्ध होकर उसे कैद किया, उसके प्राण-नाश के लिए उसपर तलवार से आघात किया, उसे आग में फेंका और जल में डुबाया। तिस पर भी रावण की मृत्यु नहीं हुई। यह देखकर सहस्रार्जुन के मन से इस बात का सन्देह दूर हुआ कि यह ब्रह्मा जी के वरदान से कभी मरेगा नहीं। (१८)

भरसाकृत—साहसपूर्वक; **बिकलभाव नोहिला लब**—जरा भी कष्ट नहीं हुआ; **प्राभव**—पराभव; **केमन्त मल्ल !**—कैसा वीर !; **तुल कि आछि ?**—कौन उसके बराबर है ? (१८)

वेदमतीरे मति बळाइ देला से कन्या तनु जळाइ
मो हेतु मृत्यु ए शाप पाइ तहुँ चपळे, य़े ।
बोलि मर्कट निन्दि नन्दीरे आनन्द हरि तळप्रहारे,
बोले से हेउ प्राभव तोरे वानरे नरे, य़े ।

सरलार्थ—वेदमती नाम्नी एक कन्या (जिसने लक्ष्मी के अंश से गन्धर्ववंश में जन्म ग्रहण किया था) विष्णु भगवान् को स्वामी के रूप में पाने की अभिलाषा से तपस्या कर रही थी। उसके रूप-लावण्य से मुग्ध

बधिला अनरण्ये अय़ोध्यापुरे, ये ।
वराहवरे अति माया य़ुद्धरे, ये ।
वंशे मो नाश य़िबु अवश्य नर अवज्ञा कलु राक्षस,
कहिला तहिं सेहि महीश हतकाळरे, ये । १९ ।

हो रावण ने नाना अत्याचार पूर्वक उसके सतीत्व का नाश किया। उस कन्या ने शाप दिया, "मेरी ही वजह से तेरी मृत्यु हो।" यह शाप दे आग में कूदकर उसने प्राण छोड़े। शाप-प्राप्त रावण चंचलता से वहाँ से कैलास की ओर गया और शंकर जी के द्वारपाल नन्दी को 'बन्दर' कहकर उन्हें एक तमाचा मारा। इस हेतु नन्दी ने उसे शाप दिया, "बानर-सेना के ही द्वारा तेरी पराजय हो।" फिर अयोध्या के राजा अनरण्य का माया-समर के द्वारा वध करने पर, मरते समय राजा ने कहा— "रे राक्षस! तूने मुझे मनुष्य समझकर मेरा अपमान किया है। सुतरां मेरे ही वंश में कोई जन्म लेकर तेरा वध करेगा।" (१९)

मति बलाइ—मन लुभा कर; नाश यिबु (जिबु)—(तू) मारा जाय गा; तळ-प्रहारे—तमाचे से; बराहवरे—प्रधान युद्ध में; (१९)

बिबुधाळय आभीरग्राम परि सुरभी लुण्ठने क्षम
सुमनब्राजे से दण्ड क्रम क्रमशे देइ, ये ।
बान्धिला अधिकारीकि सुत य़ाहा आज्ञारे से इन्द्रजित
शाढ़ी पाइला जगततात विधिरे तहिं, ये ।
बलिसद्म पक्वण प्रायक कला, ये ।
बाजुँ टमक तांकु चमक देला, ये ।

सरलार्थ—रावण ने स्वर्ग को ग्वालों का ग्राम समझकर कामधेनुओं को लूटा और देवताओं को ग्वाल समझकर बहुत दण्ड दिया। उसके पुत्र मेघनाद ने पिता की आज्ञा से अमराधिप इन्द्र को बाँध लिया। इसलिए ब्रह्माजी से उसे 'इन्द्रजित्' की पदवी मिली। दुष्ट रावण ने पातालपुर को शवरपल्ली[1] के समान नष्ट कर दिया। उसके नगाड़े की आवाज सुनकर सब नाग, शवरों[1] की तरह चौंक उठे। उस स्थान के गर्वी श्रेष्ठ नागों ने गुप्त स्थानों पर छिप कर प्राण-रक्षा करने की कोशिश की।

१ शवर नाम की एक प्राचीन जंगली जाति। राम की भक्त शवरी इसी जाति की थी।

बञ्चिले लुचि से मदभर नागेशवर गोप्य स्थानर
मणि - दिहुड़ि देखाइबार सम्मति हेला, ये । २० ।

परन्तु उनके फनों पर की मणियों ने मशालों की तरह जलकर उन्हें पहचनवा दिया । इसलिए अनन्योपाय (लाचार) होकर नागों ने रावण का लोहा माना । शर्त यह रही कि वे रावण को अन्धकार में मणियों-रूपी मशाल दिखाकर उसकी सेवा करेंगे । (२०)

विबुधाळय—स्वर्ग; आभीरग्राम—अहीरों का गाँव; सुरभी—कामधेनु; सुमन व्राज—देवसमूह; शाढ़ी पाइला—साड़ी, (यहाँ पद्वी) पाई; प्रायक कला—की तर किया; बळिसद्म—पाताल; पक्वण—शवरों की नगरी; बाजुं—बजते ही; बञ्चि लुचि—छिप कर प्राण बचाने का यत्न किया; मदभर नागेशवर—गर्वित नागसमूह दिहुड़ि—मशाल; (२०)

बइजयन्ती[1] याहा जगति वइजयन्त[2] चञ्चळे भीति
मोते ए बान्धि नेबाकु गति करे नभरे, ये ।
विकर्त्तनर रथ हाबोड़ि भगने मध्यगगन छाड़ि
बेनि अयन चळने जड़ि चित्त निर्भरे, ये ।
वृथा ए कथा नोहे बुझ विचारि, ये ।
बोलाइछि से मेघदण्ड पाचेरी, ये ।
बइरिपूग दुर्गम दुर्ग यहिँ परिखा सागर आग
एपरि होइ पाताळ स्वर्ग से धिक करि, ये । २१ ।

सरलार्थ—रावण के प्रासाद की पताका इतनी ऊँचाई पर चंचलता से फहर रही थी कि इन्द्र के प्रासाद को भय हुआ—'क्या मुझे बाँध ले के लिए यह आकाश पर गमन कर रही है ? सूर्य भी आकाश मार्ग जाते समय यह भय करके कि कहीं अपना रथ रावण के प्रासाद टकराकर टूट न जाय, मध्य गगन-मार्ग को छोड़ उत्तरायण और दक्षिणाय करके निश्चिन्त हुए । (हे पण्डितो !) विचार करके समझो, झूठ नहीं । रावण के प्रासाद के प्राचीर (परकोटे) इतने ऊँचे हैं मेघ आकाश पर चलते समय उनसे टकराकर नष्ट हो जाते हैं । इ हेतु वे प्राचीर 'मेघदण्ड प्राचीर' कहलाते हैं । गढ़ की परिखा के में सागर चारों ओर घेरे हैं । इस प्रकार शत्रुओं से दुर्भेद्य लंका प्र स्थान प्राप्त करके स्वर्ग तथा पाताल को धिक्कारती है । (२१)

बइजयन्ती[1] (वैजयन्ती)—पताका; जगति—अट्टालिका, प्रासाद; बैजयन्त[2]—इन्द्र का प्रासाद; मोते—मुझे; बान्धि नेबाकु—बाँध लेने के लिए; विकर्त्तन—सूर्य; हाबोड़ि—टक्कर खा कर; बेनि अयन—दोनों (उत्तरायण व दक्षिणायण) मार्गों पर; बइरिपूग—शत्रु-समूह; एपरि होइ—ऐसा होकर; । (२१)

वळि एकरे से त रुचिर बहुत बळी छन्ति एथिर,
से चारु शेषरंगे ए चिर, अशेष रंगे, ये ।
बसइ सुनासीरेक[1] तहिँ ए केते सुनासीररे[2] शोहि
एपरि होइ चित्ररथहिँ केवळ वर्गे, ये ।
बड़ बड़ दानव पूर्वरे थिले, ये ।
बड़ाइकि एरुपे करि न थिले, ये ।
विरचिं वीरवर उपेन्द्र— भञ्ज स्वच्छन्दे विचित्र छान्द
चित्त निश्चिन्त नीळाद्रि-चन्द्र ध्यान सफळे, ये । २२ ।

सरलार्थ—पातालपुर एक ही बलिराजा से शोभित हो रहा है, परन्तु इस लंकापुर में बहुत वली (वलवान् वीर) विद्यमान हैं। पाताल शेषदेव के रंग से (तेज से) सुन्दर है, किन्तु यह लंकापुर अशेष रंगों से (बहुत वर्णों से) सुन्दर है। स्वर्ग में एक ही सुनासीर (इन्द्र) वास करता है, लंका में असंख्य सुनासीर (सेनापति) शोभित हो रहे हैं। स्वर्ग एक ही चित्ररथ से शोभित है, किन्तु यहाँ बहुत चित्रित रथ हैं। यहाँ पहले बड़े-बड़े राक्षस सब थे तो सही, किन्तु रावण के समान किसी ने इतनी बड़ाई नहीं प्राप्त की थी। वीरवर उपेन्द्र भञ्ज ने स्वच्छन्द व निश्चिन्त चित्त से श्री जगन्नाथ जी के ध्यान में सफलता लाभ करके इस विचित्र छान्द (अध्याय या सर्ग) की रचना की। (२२)

वळि—वलिराजा (पाताल का राजा); बली—बलवान्; छन्ति एथिर—यहाँ हैं; शेष—वासुकी; अशेष—बहुत; सुनासीर[1]—इन्द्र, सुनासीर[2]—सेनापति; चित्ररथ—स्वर्ग का गन्धर्व; चित्ररथ—चित्रित रथ; थिले—थे; करि न थिले-नहीं की थी; नीलाद्रिचन्द्र—जगन्नाथ महाप्रभु। (२२)

॥ प्रथम छान्द ॥

द्वितीय छान्द

राग-मंगळगुज्जरी

बिदुष ! दूषण-बिबर्ज्जित गीते रस,
बिष्णु-चरित त्वरित करिब हरष ये । १ ।

सरलार्थ—हे पण्डितो ! आप लोग दोषशून्य इस गीत से अनुर
होवें, क्योंकि यह विष्णु-चरित आप लोगों को शीघ्र हर्ष-दान करेगा । (१

विदुष—हे पण्डितो ! ; दूषण-विर्वजित—दोषशून्य; करिब-करेगा । (१)

बामदेब देबराज गुरु संगतिरे,
विमने सुमने गले क्षीरसिन्धु तीरे ये । २ ।
ब्रह्माण्ड क्षोभिते भीते ब्रह्मा प्रमुखरे,
बिश्वम्भर भरसारे स्तुति कले खरे ये । ३ ।

सरलार्थ—रावण के उपद्रव के कारण, भय से ब्रह्माण्ड के अस्
होने पर महादेव, इन्द्र, बृहस्पति आदि देवगण ब्रह्मा के साथ विषण्ण
से क्षीरसिन्धु के किनारे पर गये और विश्वम्भर (विश्व के पालनकर्त्त
के उद्देश्य से शीघ्र स्तुति की । (२-३)

**वामदेव—शिव; देवराव—इन्द्र; गुरु—बृहस्पति; विमने—विषण्ण मन से; सुम
देवगण; गले—गये । (२)**

**क्षोभिते—क्षुब्ध होने से, ब्रह्मा प्रमुखरे—ब्रह्मा जी के नेतृत्व में; विश्वम्भ
विष्णु; कले—की; खरे—शीघ्र । (३)**

बहित लीळा रोहित[1] रोहित[2] मूरति,
बेगे दरदैत्य[1] दरदाने[2] हेल रति हे । ४ ।

सरलार्थ—हे विष्णु ! आप लालवर्णी विशिष्ट रोहू मत्स्य का
धारण करके शंखासुर को भय-दान करने में रत हुए, अर्थात् आप उ
प्राणों के विनाश में लग गये । (४)

**रोहित[1]—लालवर्ण; रोहित[2]—रोहू मछली (यमकालंकार); दरदैत्य[1]—शंखा
दरदाने[2]—डर (भय) देने में ('दर' शब्द में यमक) । (४)**

बहि अमन्दमन्दर कूर्म नमोनम,
बारिधि-अमृत मन्थु अमृत जनम ये। ५।

बिपक्षे देबारि बारि परशिल सुधा,
विश्वमोहित मोहिनी रूपरे विशुद्धा ये। ६।

सरलार्थ–नारायण ! आपने कूर्मावतार में वृहत् मन्दर-पर्वत-धारण पूर्वक सागर का जल-मन्थन कराके उससे अमृत उत्पन्न किया। फिर विश्वमोहनी मोहनी का रूप धारण करके देवताओं के शत्रुओं (असुरों) को अलग कर हम लोगों (देवताओं) को ही अमृत परोसा। हे कूर्मावतारी प्रभो ! आपको हम नमस्कार कर रहे हैं। (५-६)

अमन्द मन्दर—बृहत् मन्दर पर्वत; बारिधिअमृत—सागर का जल। (५)

देवारि—राक्षस; वारि—निषेध करके; परषिल—परोसा; बिशुद्धा—निष्कलंक। (६)

बराहबर[1] बराहबर[2] - सुपण्डित,
बल्लभमहीर हिरण्याक्षकु खण्डित ये। ७।

सरलार्थ–हे बराहश्रेष्ठ ! आपने श्रेष्ठ-समर-विशारद पृथिवीपति हिरण्याक्ष दैत्य का विनाश किया। (७)

वराइवर[1]—वराहश्रेष्ठ; वराइवर[2]—भयंकर युद्ध (यमकालंकार); वल्लभ-महीर—चक्रवर्त्ती। (७)

बपुवन्त हरि, हरि प्रह्लाद-पुण्यकु,
बिदारिल करीपरि करि हिरण्यकु ये। ८।

सरलार्थ–हे हरि ! प्रह्लाद के पुण्य के फलस्वरूप आपने नरसिंह का रूप धारण किया और हिरण्य राक्षस को हाथी की तरह करके विदारण किया। (८)

बपुवन्त हरि—नृसिंहमूर्त्तिधारी नारायण; हरि प्रह्लाद पुण्यकु—प्रह्लाद के पुण्य से आकर्षित हो, ('हरि' शब्द में यमक)। (८)

बामन मनमोहन होइ भूदानरे,
बळिष्ठ बळिकि चापि अधोभुवनरे ये। ९।

सरलार्थ–हे नारायण ! अपने पञ्चम अवतार में मनमोहन वामन-मूर्त्ति धारण-पूर्वक भूमिदान-ग्रहण के बहाने आपने बलिष्ठ बलि को पाताल में पराभूत किया । (९)

अधोभुवनरे—पाताल में । (९)

बिभु भृगुवंश - पर परशुधारण,
बाहुज बाहुसहस्र दारण कारण हे । १० ।

सरलार्थ–हे प्रभो ! आप भृगुकुल-श्रेष्ठ परशुराम के रूप में परशु (कुठार, कुल्हाड़ी) धारण-पूर्वक क्षत्रियवीर सहस्रार्जुन के वध के कारण बने । (१०)

भृगुवंशपर—भृगुवंशश्रेष्ठ परशुराम; बाहुज—क्षत्रिय; बाहुसहस्र—सहस्रार्जुन । (१०)

बिंशकर करणीकि नाहिं सरि रक्ष[1],
बिनति उन्नतिहीने आम्भे, प्रभु ! रक्ष[2] हे । ११ ।

सरलार्थ–विंशबाहु रावण के प्रताप का मुकाबला कर सकने वाला दूसरा कोई राक्षस नहीं । उसके प्रताप से हम लोगों के निस्तेज हो जाने से हम लोग आपकी वन्दना कर रहे हैं । हे प्रभो ! हम लोगों की रक्षा कीजिएगा । (११)

विंशकर—रावण; करणी—प्रताप; सरि—समान; रक्ष[1]—राक्षस; रक्ष[2]—रक्षा करो (प्रान्तयमक) । (११)

बुध बिबुधंक स्तुति घेनि कम्बुधर,
बशीभूत हेले बसि गरुड़ कन्धर ये । १२ ।

बोइले, प्रबरवर दिअ काहिँ-पाइँ ?
बेभारे त्रिपुर-भार दैत्ये जाण नाहिँ हे । १३ ।

सरलार्थ–ब्रह्मादि प्रमुख देवताओं की स्तुति से कम्बुधर (नारायण) प्रसन्न हुए और गरुड़ के कन्धे पर बैठ उनके सम्मुख उपस्थित हुए । उन्होंने ब्रह्माजी से पूछा, "तुम ऐसा उत्कृष्ट वरदान (राक्षसों को) क्यों

देते हो ? स्वभाव से दैत्य लोग तीन पुरों (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) के शत्रु हैं, क्या तुम यह नहीं जानते ?" (१२-१३)

बुध बिबुधंक—विज्ञ देवताओं की; स्तुति घेनि—स्तुति ग्रहण करके। (१२)

बोइले—बोले; प्रबरवर—उत्कृष्टवर; दिअ काहिंपाइँ—क्यों देते ?; बेभारे—स्वभाव से; त्रिपुर-भार—तीन पुरों के शत्रु; जाण नाहिं—क्या यह नहीं जानते ? (१३)

बोइल ये पूर्व पूर्वदेवे बळे सार,
बिनाशनरे कीनाश प्रकार संसार ये। १४।

सरलार्थ—तुम लोग कहते हो कि रावण पूर्व के पूर्वदेवों से (अर्थात् राक्षसों से) अधिक बलवान् है और सृष्टि का विनाश करने में यम के सदृश है। [तब] यह जानते हुए भी उसे ऐसा बरदान क्यों दिया ? (१४)

पूर्व पूर्वदेवे—पूर्व के राक्षसों से; कीनाश—यम। (१४)

बिहि बिहिले शुणि ता कि भक्तिवचन,
बर करुँ उचिते ए चित्ते बिरचन ये। १५।

बिलोकन हेब नब नब अवतार,
बिधुर मधुर लीळा होइब विस्तार ये। १६।

सरलार्थ—विष्णु भगवान् के वचन सुनकर ब्रह्माजी ने भक्तिपूर्वक कहा, "आपके नये-नये अवतारों के दर्शन होंगे तथा (विधु यान विष्णु की) मधुर क्रीड़ाओं का भी विस्तार होगा। हृदय में इसी लक्ष्य का ध्यान करके हम उचित ही राक्षसों को ऐसा वरदान दिया करते हैं।" (१५-१६)

बृषभासने[1] वृषभाषणे[2] अतितर,
बिभो तार येउँ नाम तारक मन्तर ये। १७।

बहि सेहि मूरति रतीश-कोटि—जित,
बाञ्छा पूरु हे पुरुषोत्तम मुँ भाबित ये। १८।

सरलार्थ—इसके अनन्तर महादेव जी अति शीघ्र उच्च स्वर में बोल उठे, हे विभो !, हे पुरुषोत्तम ! आपके जिस नाम पर तारक-मन्त्र आधारित है, करोड़-कन्दर्प-विजयी वही राम की मूर्त्ति आप

धारण करें। उसी मूर्त्ति के दर्शन के लिए मैं उत्कण्ठित हूँ। मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण हो। (१७-१८)

वृषभासने[1]—शिव; वृषभाषणे[2]—उच्च स्वर में; अतितर—अतिशीघ्र; तार-त्राण करो; रतीश-कोटि-जित—करोड़-कन्दर्प-विजयी; बाञ्छा पूरु—कामना पूर्ण हो; मुँ भावित—मैं चिन्तित (उत्कण्ठित) हूँ। (१७-१८)

विरूपाक्ष बोलिबारे बार कि शोचन,
बीक्षण लोभे ईक्षण तिनि मुँ रचन हे। १९।
बक्त्र पाञ्च[1] पाञ्च[2] एहि बहि स्तुति कृते,
बहन बह से रूप मोहरि स्वकृते हे। २०।

सरलार्थ—आगे शिव जी ने कहा, "मुझे विरूपाक्ष (तीन आँखों के कारण) कहते हैं। इसका मुझे तनिक भी सोच नहीं। खास करके उसी राम-रूप के दर्शन-निमित्त मैंने तीन आँखें रखी हैं। इसी उद्देश्य को सामने रखकर कि मैं बहुत मुखों से राम जी की स्तुति कर सकूँ, मैंने पाँचमुख धारण किये हैं। अतएव हे प्रभो! मेरे पुण्य-बल से आप रामरूप धारण करके मेरी मनस्कामना पूर्ण करें। (१९-२०)

वीक्षण—देखना; ईक्षण—चक्षु। (१९)

वक्त्रपाञ्च[1]—पञ्चमुख; पाञ्च[2]—अभिलाषा, कल्पना; 'पाञ्च' शब्द में 'यमक'; मोहरि सुकृते—मेरे ही पुण्यबल से। (२०)

बास्तोष्पति पतित अछन्ति केते भाषि[1],
बह से रूप स्वरूपे न य़ान्तु से भासि[2] हे। २१।

सरलार्थ—वास्तोष्पति (इन्द्र) ने कहा, "संसार में बहुतेरे पापी हैं; वे लोग अपने [पापमय] रूप के कारण बह न जायँ। आप राम-रूप धारण करें। (आपके दर्शन से उन लोगों का पाप भी दूर होगा और साथ ही वे मुक्ति लाभ करेंगे।" (२१)

बास्तोष्पति—इन्द्र; पतित—पापी; अछन्ति—हैं; केते—कई, कितने; भाषि—कहा; न य़ान्तु से भासि—वे बह न जावें (भाषि—भासि, प्रान्त यमक अलंकार)। (२१)

बिश्वकसेन सेनेह करि ए उत्तरे,
बिधु-काश-जित हास प्रकाशि सत्वरे य़े। २२।

बहिबि नाहिँ मुँ अरि[1] अरिमारणरे[2],
बिराजमान[1] बि—राज[2] न चढ़ि रणरे ये। २३।

बनौका प्रबळ बळ संग हेबे हेळे,
बोलिण अन्तर ये अन्तरय़ामी हेले ये। २४।

सरलार्थ—देवताओं के उत्तर सुनकर विष्णु जी ने चन्द्रमा तथा काश (कांस) फूल को निष्प्रभ करनेवाले स्नेहमिश्रित हास्य प्रकाश करते हुए कहा, "शत्रुओं का विनाश करने के लिए मैं चक्र धारण नहीं करूँगा, और न समर-क्षेत्र में गरुड़ पर बैठकर विराजूँगा। [इस बार] असंख्य वानर-सैन्यों को साथ लेकर आसानी से शत्रु-नाश करूँगा।" यह कह कर अन्तर्यामी अन्तर्हित हो गये। (२२-२३-२४)

विश्वकसेन—विष्णु; विधु-काश-जित हास—चन्द्र तथा काश फूल को जीतने वाला हास्य; अरि[1]—चक्र; अरिमारणरे[2]—शत्रुओं को मारने में ('अरि' में यमक); विराजमान[1]—शोभित; वि-राज[2]—गरुड़ (यमक); बनौका—वानर (बन्दर); बोलिण—बोलकर; अन्तर ये अन्तरय़ामी हेले—अन्तर्यामी दूर हुए ('अन्तर' में यमक)। (२२-२३-२४)

वैधात्र कथित स्थित एमान प्रसंगे,
विधिरे सधीरे गंगाकूळे ऋषि संगे ये। २५।

सरलार्थ—गंगा नदी के किनारे पर सनत्कुमार ने कथाप्रसंग में और ऋषियों से विष्णु भगवान् के भावी अवतार आदि विषय कहे। (२५)

वैधात्र—सनत्कुमार; एमान—ये सब विषय। (२५)

बिबेक सुमन्त्र सुमन्तर थिला याइ,
बिचारिला पचारिला भाब उपुजाइ ये। २६।

सरलार्थ—विवेकवन्त और उत्तम विचारक (दशरथ के मन्त्री) सुमन्त्र संयोग से वहाँ गये हुए थे। उन्होंने इन सब विषयों का विचार किया और मुनि से भक्तिभाव-पूर्वक निम्नलिखित प्रश्न पूछे। (२६)

थिला याइ—गया था; बिचारिला—विचार किया; पचारिला—पूछा, प्रश्न किया; भाव उपुजाइ-भक्ति उपजाकर, भक्ति के साथ। (२६)

बैजयन्तीमाळाधर धरणीकरता,
बर्ष्म धरि केउँ धरित्रीश कुळेरता ग्ने । २७ ।

सरलार्थ–"वैजयन्तीमाला-धारी जगत्कर्त्ता (नारायण) किस राजा के वंश में शरीर धारण कर जन्म लेंगे ? (२७)

वैजयन्तीमाळाधर—(विष्णु जी की स्वनाम-प्रसिद्ध माला को धारण करने वाले) विष्णु; बर्ष्म धरि—शरीर धारण करके; केउँ—किन । (२७)

ब्रिभ्राजित भवनरे बनरे होइबे,
बात्सल्यरसबत्सळ होइण दइबे ग्ने ? । २८ ।

सरलार्थ–भगवान् दैवयोग से वात्सल्यरसानुरागी होकर गृह में प्रकाशित होंगे या वन में उत्पन्न होंगे ? (२८)

होइण—होकर । (२८)

बिकशित शीतकर धबळ पक्ष्यरे,
बिहायसे ग्नथा बिहार से ए लक्ष्यरे ग्ने । २९ ।

बन्धुबर्ग - जीवञ्जीब नयन तोषिबे,
ब्यक्ते भक्तसरब-कैरब उल्लासिबे ? ग्ने । ३० ।

सरलार्थ–शुक्ल पक्ष में चन्द्र विकसित होते हैं और आकाश में विहार करते हैं । चकोरों तथा कुमुदों को आनन्द प्रदान करना चन्द्र का लक्ष्य होता है । उसी तरह विष्णु भगवान् प्रकाशित होकर बन्धुवर्ग-रूपी चकोरों तथा भक्तों-रूपी कुमुदों को सन्तुष्ट तथा उल्लसित करेंगे क्या ? (२९-३०)

शीतकर—चन्द्र; धवलपक्षरे—शुक्ल पक्ष में । (२९)

जीवञ्जीव—चकोर; कैरव—कुमुद । (३०)

बैरी-पद्मङ्कर कर हेब अमोदित,
बिधु नामहिँ एणु कि महीरे उदित ? ग्ने । ३१ ।

सरलार्थ–चन्द्र के उदित होने पर पद्म का हर्ष, विषाद में परिणत

होता है । वही विष्णु शत्रुओं-रूपी पद्मों के हर्ष को विषाद में परिणत करके अपने 'विधु' नाम की यथार्थता प्रतिपादन करेंगे क्या ? (३१)

एणु—इसलिए । (३१)

बोले प्रसन्ने सनतकुमार पेशळे,
बर्त्तिबे य़े उत्तर कोशळे से कुशळे य़े । ३२ ।

सरलार्थ—सुमन्त्र के प्रश्नों से सनत्कुमार ने प्रसन्न होकर कहा, "भगवान् नारायण उत्तरकोशल (याने अयोध्या) में कुशलता से जन्म ग्रहण करेंगे । (३२)

बर्त्तिबे—जन्म ग्रहण करेंगे । (३२)

बोलाइबे दाशरथि रथिश्रेष्ठ हरि[1],
बर्णिबे कबित्वे कवि नेबे चित्त हरि[2] य़े । ३३ ।

सरलार्थ—रथिश्रेष्ठ हरि दाशरथि (दशरथ के पुत्र) कहलाएँगे, जिनके चरित का काव्य में वर्णन करके कवि लोग पाठकों के मन बहलाएँगे । (३३)

हरि[1]—विष्णु; हरि[2] नेबे—हरण करलेंगे । 'हरि' में प्रान्तयमक । (३३)

बाहुड़ि सचिब शचीबरभूति लभे,
बन्दन अजनन्दन कौशल्या-वल्लभे य़े । ३४ ।

बृत्तान्त तातपर्य्यरे सबु जणाइला,
बृद्धकाळे सुभाग्यता प्रबृद्ध होइला य़े । ३५ ।

सरलार्थ—मन्त्री सुमन्त्र सनत्कुमार की बातों को सुनकर सहर्ष अयोध्या लौट गये, मानो उन्हें इन्द्र-संपत्ति मिल गयी हो । आपने अज-पुत्र, कौशल्या-पति दशरथ का बन्दन किया और "हरि आपके पुत्र के रूप में पैदा होंगे" आदि सारे समाचार महाराज को संक्षेप में कह सुनाये । फिर आगे कहा, "बुढ़ापे में आपके सौभाग्य को वृद्धि प्राप्त हुई ।(३४-३५)

बाहुड़ि—लौटकर, बहुरि (अवधी में) । (३४)

जणाइला—जताया; होइला—हुआ । (३५)

बिकळ कळना होइ करुथिला रंग,
बनदनिनद किबा शुणिला सारंग ये । ३६ ।

सरलार्थ—पुत्र न होने के कारण राजा दशरथ के हृदय में बड़ी व्याकुलता थी; जैसे प्यास के हेतु पपीहा तड़पता है। अब सुमन्त्र की बातें सुनकर फूले न समाये; मानो प्यासे पपीहे ने घनगर्जन सुना हो। (३६)

करुथिला—करता था; रंग—दशा; बनदनिनद—मेघ का गर्जन; शुणिला—सुना; सारंग-पपीहा, चातक। (३६)

बामदेब, जाबाळि[१], या-बाळी[२] अरुन्धती,
बेगे मिळित लळित जटाबर-धृति ये । ३७ ।

सरलार्थ—वामदेव, जावालि और (जिनकी पत्नी अरुन्धती है, वह) वशिष्ठ आदि ऋषि वहाँ पर उपस्थित हुए। वे सब मस्तकों पर मनोहर जटाएँ धारण किये हुए थे। (३७)

जाबाळि[१]—एक ऋषि; याबाळी[२] अरुन्धती—जिनकी पत्नी अरुन्धती हैं, अर्थात् वशिष्ठ, (यमक)। (३७)

बिमळ नळिन-लीन लपने मनाइ,
बसुमतीश अति सहरष, अनाइ ये । ३८ ।
बोलुअछन्ति छतिश-कुळीन यमर,
बध शुणिल जाणिलुँ परशुरामर ये । ३९ ।

सरलार्थ—राजा दशरथ को अत्यन्त प्रसन्न होते देखकर उन ऋषियों ने अपने-अपने मुख पर प्रस्फुटित कमल का-सा आनन्द प्रकाश करके कहा, "महाराज, आपके हर्ष से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो आपने यम के सदृश भयंकर ब्राह्मण परशुराम की निधन-वार्त्ता सुनी हो। (३८-३९)

अनाइ—देखकर। (३८)

छतिशकुळीन—ब्राह्मण; शुणिल—तुमने सुना; जाणि लुँ—हमने जाना (हमको ऐसा प्रतीत हुआ)। (३९)

बारिधि - मन्द - मन्दर - नृपगणेश्वर,
बिरचन वचन आनन्दमय स्वर ये । ४० ।

बृहद्भानु भानुरु मुँ शीतळ पाइबि,
बिन्ध्य परबत हस्त उपरे थोइबि ये। ४१।

बिकुषकु मने करें करे धरिबाकु,
बायकु पाशे पकाइ पाशे[२] रखिबाकु ये। ४२।

सरलार्थ–शनिरूपी सागर के मन्थनकारी मन्दर-पर्वत सदृश नृप-श्रेष्ठ राजा दशरथ ने आनन्दमय स्वर में कहा, "अग्निदेव तथा सूर्यदेव से मैं शीतलता प्राप्त करूँगा और बिन्ध्य पर्वत को अपने हाथ पर रखूँगा। और भी; चन्द्रमा को हाथ में रखने तथा वायुको फँदे से बाँधने की इच्छा करता हूँ। (अर्थात् ऐसी अभिलाषाएँ मुझे असम्भव सी प्रतीत होती है। (४०-४१-४२)

बारिधि-मन्द-मन्दर—शनिरूपी सागर के मन्दर पर्वतके सदृश मन्थनकारी; नृपगणेश्वर—नृपश्रेष्ठ दशरथ; बृहद्भानु—अग्नि; भानु—सूर्य (यमक); पाइबि—पाऊँगा; थोइबि—रखूँगा। (४०-४१)

बिकुषकु—चन्द्र को, मने करे—मन करता हूँ; करे—हाथों में (यमक); पाशे[१]—फंद में; पाशे[२]—पास (यमक)। (४२)

बशिष्ठ शिष्ट उक्ति कि तहिँ प्रकाशिले,
बिषय कि? संशय कि? सुमन्त्र भाषिले ये। ४३।

सरलार्थ–दशरथ की ये बातें सुनकर बशिष्ठ कुछ समझ नहीं सके और संशय-चित्त होकर शिष्टता से उन्होंने पूछा, "विषय क्या है?" सुमन्त्र ने प्रभु का दशरथ-पुत्र के रूप में जन्मग्रहण आदि सारी बातें सुनाकर अन्त में कहा, "इसमें संशय क्या है?" अर्थात् "इसमें संशय बिलकुल है ही नहीं।" (४३)

बुझि मुनि हसि हसि सम्मतिकु इच्छि,
बाल्मीकि भबिष्य पुराणकु पुरा इच्छि ये। ४४।

सरलार्थ–अब वशिष्ठ जी सुमन्त्र की बातों को समझ गये। हँसते हुए अपनी सम्मति प्रदान करके आपने फिर कहा, "वाल्मीकि मुनि ने भविष्य पुराण में पहले से यह लिख रखा है। (४४)

बैकुण्ठ बैकुण्ठपुर शून्य पूर्ण मूर्त्ति,
बिशेषत श्रुति[१] अछि श्रुति[२] ये सुमृति ये। ४५।

सरलार्थ–वेद तथा मनु प्रभृति धर्मशास्त्रों में यह विशेष रूप से श्रुत (सुना हुआ) है कि विष्णु जी बैकुण्ठ को शून्य करके पूर्ण मूर्त्ति धारण-पूर्वक मर्त्यलोक में जन्म ग्रहण करेंगे । (४५)

बैकुण्ठ—विष्णु; बैकुण्ठपुर—विष्णु का वासस्थान (स्वर्गपुर) (यमक); श्रुति[1] अछि—सुना है, श्रुति[2]—वेद (यमक) । (४५)

बाञ्छा से अनुसरण शरण बिहित,
बैबस्वतकुळे स्वतः आम्भे पुरोहित ये । ४६ ।

सरलार्थ–उन्हीं मानवावतारी विष्णु भगवान् की शरण का अनुसरण करने की कामना से हम स्वेच्छा से वैवस्वत मनु के वंश में (सूर्यवंश में) पुरोहित हुए हैं ।" (४६)

आम्भे—हम । (४६)

बेळुँ बेळ नृपति - चित्तकु द्रबाइला,
बिधुशिळ परि बिधु से बाणी होइला ये । ४७ ।

सरलार्थ–चन्द्र जिस तरह चन्द्रकान्तमणि को पिघला देता है, उसी तरह, मुनि के चन्द्र के समान शीतल वाक्यों ने राजा के चित्त-रूपी चन्द्र-कान्तमणि को पिघला दिया । (४७)

बिधुशिळ—चन्द्रकान्तमणि; बिधु—चन्द्र । (४७)

बित्त बितरण सेहि दिनु से कामरे,
ब्रत सजित पूजित अपूज्य अमरे ये । ४८ ।

सरलार्थ–विष्णु भगवान् को पुत्र के रूप में प्राप्त करने की कामना से राजा दशरथ उसी दिन से दीनों में धन-रत्न का वितरण तथा विविध ब्रतों का आचरण करने लगे और उन्होंने अपूज्य रहे हुए देवताओं की पूजा की । (४८)

बैष्णबे भूसुरे सुरे कराइ मोदकु,
ब्रह्मचर्य्ये कर्म कृत कर्मशुभदकु ये । ४९ ।

सरलार्थ–राजा ने वैष्णवों, ब्राह्मणों तथा देवताओं की पूजा करके उनका आनन्द बढ़ाया । स्वयं वे ब्रह्मचर्य ब्रत में ब्रती होकर कार्य करने लगे ताकि ये सब कर्म शुभकारी हों । (४९)

बिबेचनामान मानसरे करे नित्य,
ब्यबस्थिते रजनीरे सुस्वप्न जनित य़े । ५० ।

वितपन तपनबंशी से नृपोत्तम,
बिनाशइ दिनकु दिन से चिन्तातम य़े । ५१ ।

सरलार्थ—सूर्य सदृश तेजस्वी सूर्य-वंशीय नृपश्रेष्ठ दशरथ नित्य अपने मन में पुत्रोत्पत्ति-विषय पर आलोचना-विवेचना करने लगे, और इसी हेतु रात में उसी प्रसंग में शुभ स्वप्न देखते रहे। इसके फलस्वरूप, उनके हृदय से चिन्ता-रूपी अन्धकार का नाश हुआ; अर्थात् धीरे-धीरे हृदय से चिन्ता हटती गयी। (५०-५१)

बोले उपइन्द्र भञ्ज भञ्जने दुरित,
बान-पदरे आदरे रचित चरित य़े । ५२ ।

सरलार्थ—अपने पापों के विनाश के लिए इसी चरित का वर्णन करते हुए उपेन्द्र भञ्ज ने आनन्द के साथ बावन पदों में इस छान्द की रचना की। (५२)

॥ इति द्वितीय छान्द ॥

तृतीय छान्द

राग-रामकेरी

आद्ययमक

बिदुष हे ! शुण रञ्जनरस मनकु देइ ।
बिदूषण राजसमाजे धर्मस्वरूपी सेहि । १ ।

बिदित मिथिळा नृपति नाम जनक तार ।
बिदिग दिगरे होइछि ख्यात य़श य़ाहार । २ ।

बिदगध[1] य़ज्ञ कर्मरे सर्वदारे से अति ।
बिदगध[2]-चित्त प्रापत नोहिबारे दुहिती । ३ ।

सरलार्थ—हे पण्डितो ! अनुराग-वर्द्धक इस रस को मन देकर सुनो। राजाओं में निष्पाप तथा परमधार्मिक, मिथिला राज्य के अधिपति जनक ऋषि हैं, जिनका यश चारों ओर प्रख्यात है। आप यज्ञ-कर्म में हमेशा निपुण हैं, परन्तु एक कन्या के अभाव-हेतु आपका हृदय व्याकुल रहता था। (१-२-३)

बिदुष हे !—हे पण्डितो! ; रञ्जन—अनुराग-बर्द्धक; बिदूषण—पापरहित; से हि—वही; तार—उनका; बिदिग दिगरे—चारों दिशाओं में; बिदगध[1]—पण्डित, निपुण; बिदगध[2]—व्याकुल। (१-२-३)

बृषाळ मखशाळ कृते दिने चषुँ अबनी ।
बृषाशापुँ मुक्ति पाइण मेना नामे कामिनी । ४ ।

बसि विमानरे गगने करुअछि गमन ।
बशीभूत शोभाप्रभारे हरे जननयन । ५ ।

बुधजनक[1] कि कळङ्क हीने पूर्ण सम्पदे ।
बुधजन[2] करे परते नभे दिबसे उदे । ६ ।

सरलार्थ–राजर्षि जनक एक विस्तीर्ण यज्ञशाला बनाने के लिए एक दिन भूमि जोत रहे थे । उस समय उन्होंने इन्द्र-शाप-विमुक्ता सुन्दरी शिरोमणि मेनका अप्सरा को आकाश मार्ग पर विमान में जाते हुए देखा । उसकी शोभा की प्रभा से जन-नयन मुग्ध हो जाता है । जनक जी भी उसकी शोभा से मुग्ध हो उठे । मेनका को देखकर पण्डितों को ऐसा प्रतीत हुआ मानो कलंकहीन पूर्णचन्द्र समस्त कलाओं के साथ दिन में आकाश पर उदित हुए हों । (४-५-६)

बृषाळ—विस्तीर्ण; मखशाळ—यज्ञशाला; चषु—जोतते; वृषाशापुं—इन्द्र के शाप से; मेना—मेनका नाम्नी अप्सरा; बुधजनक[1]—चन्द्र; बुधजन[2]—पण्डित लोग ।(४-५-६)

बृषभास्या[1] से मण्डिबारे चित्त अति उद्‌बेग ।
बृषभाषा[2] एहि तरंगे ढाळिबारे अपाङ्ग । ७ ।
बिहरित[1] पुनः पुन कि सुधा पिइ चकोर ।
बिहरितरे से बहिछि निश्चे ए मनोहर । ८ ।

सरलार्थ–मेनका के चंचल कटाक्षपात से यह अनुमान किया जाता है कि वह स्वर्गपुरी जाने को उतावली हो रही है । उसे देखकर यह मनोहर उक्ति जँचती है कि मानो उसके नेत्र-चकोर उसके मुख-चन्द्र की चन्द्रिका-सुधा पान करते हुए बारबार बिहार कर रहे हों और उसके कटाक्ष-पात ने इस प्रकार चारों दिशाओं को विशेष रूप से मनोहर बना दिया है । (७-८)

वृषभास्या[1]—इन्द्रपुरी; वृषभाषा[2]—मनोहर उक्ति; बिहरित[1]—विहार करता हुआ; बिहरितरे[2]—चारों ओर । (७-८)

बळारातिपुरमण्डना शोभा जनक चाहिँ ।
बळाइले चित्त मो सुता पुण हुअन्ता एहि । ९ ।

सरलार्थ–इन्द्रपुर (स्वर्गपुर)-मण्डनकारिणी मेनका की शोभा को देखकर जनक ऋषि ने सोचा–"अहा ! यह कन्या मुझे प्राप्त होती!" (९)

बळारातिपुरमण्डना—स्वर्गपुरमण्डना (मेनका); चाहिं—देखकर; बळाइले चित्त—मन किया; मो सुता—मेरी कन्या; हुअन्ता—होती; एहि—यही । (९)

बाळारुणाधरी कहिला जाणि ताहाङ्क चित्त ।
बाळाए एक्षणि अद्भुते होए सिना प्रापत । १० ।

सरलार्थ—बाल रवि की किरणों के सदृश लाल होठों वाली मेनका ने ऋषि के मनोभाव को समझ कर कहा, "इसी मुहूर्त्त आपको अकस्मात् एक कन्या प्राप्त होगी ।" (१०)

बाळारुणाधरी—बाल रवि की किरणों के सदृश लाल होंठों वाली; ताहांक-उनका; बाळाए—एक कन्या । (१०)

बळाहकुँ[1] जन्म होइला परा ईश्वर-भीरु ।
बळाहके[2] विद्युत् प्रकाश प्राये गन्धवतीरु । ११ ।

सरलार्थ—मेनका ने आगे कहा, "जैसे पार्वती ने पर्वत से जन्मग्रहण किया था तथा जिस प्रकार मेघ में बिजली का प्रकाश पैदा होता है, वैसे पृथिवी से वह कन्या उत्पन्न होगी ।" (११)

बळाहकुँ[1]—पर्वत से; बळाहके[2] मेघ में; ईश्वर भीरु—पार्वती; गन्धवतीरु-पृथिवी से । (११)

बाणी ग्रे एपरि लाङ्गळ अग्रे जात मञ्जूषे[1] ।
बाणिज्ये रत्नसंपुटक लभ्य परा मञ्जु से[2] । १२ ।

सरलार्थ—ऐसी वाणी सुनते ही लांगल के अग्र में जनक को एक सुन्दर पिटारी प्राप्त हुई; मानो वणिक (सौदागर) को एक रत्न का संपुटक मिल गया हो । (१२)

एपरि—ऐसी; मञ्जूषे[1]—एक पिटारी; मञ्जु से[2]—मनोहर, सुन्दर (प्रान्तयमक); परा—तरह, सदृश । (१२)

बिश्वमोहिनीए ता मध्ये देखि महाहरष ।
बिश्वकर्माकृत कृत्रिमपुत्री कि कळवश । १३ ।

सरलार्थ—उस पिटारी में विश्वमोहिनी एक कन्या को देखकर जनक जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा, "विश्वकर्मा ने शायद कल से यह पुतली बनाई है। (कल-निर्मित पुतली हस्तनिर्मित पुतली से अधिक सुन्दर हुआ करती है।) (१३)

कृत्रिमपुत्री—पुतली, गुड़िया; कळवश—कल के द्वारा । (१३)

बसुन्धराभबा जनक कोळ करि स्वभाव ।
बसु धराइला कृपणे कि कृपाळु दइब । १४ ।

सरलार्थ—जनक ऋषि ने सहर्ष पृथिवी-जात उस कन्या को अपनी गोद में बैठाया, जैसे पिता अपनी कन्या को गोद में लेता है; मानो कृपालु विधाता ने कन्जूस को रत्न धराया हो । (१४)

बसुन्धरराभवा—पृथिवीसंभूता; बसु—रत्न । (१४)

विश्वसृक एक करिछि धरि शोभाचयकु ।
विश्वकेतु केतु बान्धिला जाणि जगज्जयकु । १५ ।

सरलार्थ—संसार की सारी शोभाओं को इक्ट्ठा करके ब्रह्मा ने इस कन्या को निर्मित किया है । "इसके द्वारा जगत्-जय करूँगा"—इस आशा से कन्दर्प (कामदेव) ने पताका फहरायी । (१५)

विश्वसृक्—ब्रह्मा; विश्वकेतु—कामदेव; केतु—पताका । (१५)

बहु ऋषि ताङ्क संगते मेळ होइ ये थिले ।
बहु सीता नाम ए सीता य़ोगे जात बोइले । १६ ।

सरलार्थ—जनक के साथ वहाँ पर और अनेक ऋषि एकत्र हुए थे । उन्होंने कहा, "यह सीता (लांगल अर्थात् हल से जोतते समय भूमि-रेखा) से प्राप्त हुई है, इसलिए इसे 'सीता' नाम दिया जाय ।" (१६)

सीता—लांगल (हल) का अग्रभाग । (१६)

बिधि सनमत पृथिबी-भबा पार्थिबी एहि ।
बिधिरे मिथिला-उत्सबकारी मैथिळी कहि । १७ ।

सरलार्थ—ऋषियों ने आगे कहा, "यह कन्या पृथिवी से पैदा हुई है, इसलिए विधान में इसका नाम 'पार्थिवी' हुआ । फिर दैवयोग से मिथिलापुर की उत्सवकारिणी होने से यह 'मैथिली' नाम पायेगी ।" (१७)

बिधिसनमत—विधानानुसार; बिधिरे—दैवयोग से । (१७)

बिदेहजाया[१] कोटिएक हेले सम कि आउ ?
बिदेहदेशरे[२] उद्भबि बइदेही बोलाउ । १८ ।

सरलार्थ–"करोड़ों रतियाँ इकट्ठी होकर भी क्या इसके बराबर (सुन्दर) हो सकती हैं ? (अर्थात् कदापि नहीं।) विदेह देश में इसने जन्म ग्रहण किया है, इसलिए यह कन्या वैदेही कहलावे।" (१८)

विदेह[1] जाया—कन्दर्पपत्नी (रति); विदेह[2] देशरे—विदेह देश में; (१८)

बिदुष जनक-पाळने बोलाइब जानकी।
बिदूषण शोभा जेमार आउ सम आन कि ? १९।

सरलार्थ–"पण्डित जनक ऋषि के पालन से यह 'जानकी' कहलाएगी निष्कलंक इस कन्या की शोभा की तुलना के लिए और कोई चीज़ है क्या ?" (अर्थात् नहीं।) (१९)

विदुष—पण्डित; विदूषण—दोषरहित, निष्कलंक। (१९)

बासरे उत्पळ कि लक्ष पारिजातक तुच्छ।
बासरे चहटे य़ोजनगन्धा नामहिँ स्वच्छ। २०।

सरलार्थ–"उस कन्या के सौरभ से कमल के सौरभ की क्या बराबरी हम करें ? ऐसे पारिजात का सौरभ भी तुच्छ हो जायेगा। शरीर का सौरभ एक योजन तक फैल जाता है, इसलिए इसका 'योजनगन्धा' नाम सार्थक होगा।" (२०)

बासरे—सौरभ में; उत्पळ—पद्म, कमल; चहटे—फैल जाता है; स्वच्छ—सार्थक (व्यतिरेक अलंकार)। (२०)

बड़भि[1] उपरे दोळिरे रखि धात्री पाळित।
बड़-भी[2] उपमामानङ्क असमानरु जात। २१।

सरलार्थ–पालनेवाली धात्रियाँ चन्द्रशाला पर झूले में सीता को जिस समय झुलातीं, उस समय अनुपम सौन्दर्य की सृष्टि हुई। सीता की उस समय की शोभा के बराबर न हो सकने के हेतु और उपमाओं में बड़ा भय उत्पन्न हुआ। (२१)

बड़यि[1]—चन्द्रशाला; बड़—भी[2]—बड़ा भय; उपमामानंक—उपमाओं असमानरु—असमानता से (के कारण)। (२१)

बिनिद्र कि हेम शयने दुर्गा रूपा-पलंके ।
बिनिर्गत आन उपमा सेहि काळे पलके । २२ ।

सरलार्थ—झूले पर सोयी हुई सीता को देखने से ऐसा प्रतीत हुआ, मानो सुवर्ण-कान्तिविशिष्टा दुर्गा चाँदी के पलंग पर सोयी हुई हों। उस समय कन्या के पलक लगाने से और सब उपमाएँ निकल आईं । (२२)

हेम—सोना; रूपा—चाँदी । 'पलंके'—'पलके' में (प्रान्तयमक अलंकार ।) (२२)

बाळकी[1] लीळा कउतुके अन्तःपुरस्था मोहि ।
बाळ कि[2] शैबाळ कमळ कोष उपरे शोहि । २३ ।

सरलार्थ—अपनी बाल्यावस्था की क्रीड़ा-कौतुक से उन कन्या ने अन्तःपुर की रमणियों को मुग्ध किया। उनके मस्तक पर बाल ऐसे शोभित होने लगे, मानो कमल-कली पर शैवाल (सेवार) शोभित हो रहे हों । (२३)

बाळकी[1] क्रीड़ा—बाल्यावस्था की क्रीड़ा; बाळ कि[2]—बाल क्या ('क्या' उत्प्रेक्षवाचक शब्द), शैवाळ—सेवार; कमळकोष—कमल की कली । (उत्प्रेक्षालंकार) (२३)

बाड़बर[1] चित्रप्रतिमा परि धरि ता उभा ।
बाड़बर[2] मध्ये पकाअ आन समान शोभा । २४ ।

सरलार्थ—जब वह कन्या दीवाल के सहारे खड़ी हुई, तो वह दीवाल पर अंकित चित्र-प्रतिमा की तरह शोभा पाने लगी। उसी शोभा से तुलना करने के लिए अन्य जितनी उपमाएँ उपलब्ध हैं [उन्हें] बाड़वाग्नि में फेंक दो । (२४)

बाडबर[1]—उत्तम दीवाल; उभा—खड़ी होना; बाडबर[2] मध्ये—बाड़वाग्नि में; पकाअ—फेंक डालो । (२४)

बिड़म्ब[1] नूतन मञ्जरी ढळित कि पबने ।
बिड़म्बण[2] अन्य दृष्टि ये टळ-टळ गमने । २५ ।

सरलार्थ--डगमगा कर चलते समय सीता पवन से हिलती-डुलती लम्बी नयी लता-सी दिखाई पड़ती थीं। उनकी चाल के समय दूसरी ओर

निगाह डालना व्यर्थ है। (अर्थात् उनकी चाल के सौन्दर्य के सामने दूसरी सब दिशाओं के सौन्दर्य निष्प्रभ हो जाते थे।) (२५)

बिड़म्ब[1]—बिलम्ब, लम्बी; नूतन मञ्जरी—नयी लता; ढळित—हिली-डोली; बिड़म्बण[2]—वृथा; टळ-टळ—डगमगाकर (उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक अलंकार।) (२५)

वचकु[1] बाचके न कहुँ पुणि शुणि उत्साही।
बचकु[2] पिइला पढ़िला शुक मूकरे रहि। २६।

सरलार्थ--सीता की तोतली बोली बड़ी मधुर थी। उनकी कथा को वचन में प्रकाश करते ही सुननेवालों ने फिर सुनाने को उन्हें उत्साहित किया। (उनके स्वर के साथ समान होने के लिए) तोते ने कण्ठ शोधने की एक जड़ीबूटी 'बच' खाकर पढ़ा। तिस पर भी समान न हो सकने की वजह से मूक रहा। (२६)

बचकु[1]—कथा को; बाचके—वचन में; बचकु[2]—बच्च औषधि। (२६)

बाळी से[1] खेळिला शिशुङ्क सङ्गे क्रम क्रमरे।
बाळिशे[2] लक्षिबे से काळे रम्भा रमा समरे। २७।

सरलार्थ--उन बाला (सीता) ने क्रमशः शिशुओं के साथ खेलना आरम्भ किया। उस समय की शोभा को देखकर केवल मूर्ख लोग ही कहेंगे कि ये सीता रम्भा व लक्ष्मी के समान सुन्दर हैं। (अर्थात् रम्भा तथा लक्ष्मी की शोभा भी सीता की उस समय की शोभा से तुलनीय नहीं हो सकती।) (२७)

बाळी से[1]—वह बाला (सीता); बाळिशे[2]—मूर्ख लोग। (२७)

बेणी चारुशिरे शुकळ रंग फुले यतन।
बेणी त्रिपूर्व कि नभरु हेउछन्ति पतन। २८।

सरलार्थ--सीता के सुन्दर शिर पर सुशोभित वेणी में सफेद तथा लाल रंग के फूल सुन्दरता से गुँथे हुये हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश से त्रिवेणी (गंगा, यमुना तथा सरस्वती की सम्मिलित धारा) गिर रही हो। (नीले बाल, सफेद फूल तथा लाल रंग के फूल क्रमशः यमुना, गंगा और सरस्वती से तुलनीय हैं।) (२८)

यतन-मण्डित—सुन्दर; बेणी त्रिपूर्व—बेणी के पूर्व में 'त्रि' अर्थात् त्रिबेणी। (सीता की बेणी में त्रिबेणी की कल्पना सराहनीय है।) (२८)

बिलम्बित कर्णे कुण्डळ कि से शांकुळी बळा ?
बिळम्बित दम्भ चितरे देब चाहुँ नोहिला। २९।

सरलार्थ--कानो में कुण्डल झूल रहे हैं। कुण्डलों को देखते ही वे जंजीरों की तरह आँखों को बाँध रखते हैं। कितना ही धैर्यशाली व्यक्ति क्यों न हो, उस शोभा को देखने पर अपनी आँखें वहाँ से लौटा नहीं सकता। (२९)

बय कला काहिँ ए रीतिमान सुन्दरीमणि।
बयसंगति कि प्रकाशि आन प्रकारे आणि। ३०।

सरलार्थ--सुन्दरी-शिरोमणि सीता ने धीरे-धीरे अपनी बाल्यावस्था के ढंग त्यागकर प्रथम यौवनावस्था के हावभाव प्रकाश किये। (३०)

बय कला—त्याग किया; बयसंगति—यौवनारम्भ की अवस्था। (३०)

बिभाकाळे नारी य़ेमन्ते कन्याळंकार मुञ्चि।
बिभावना हेला तहिँरे नब-बिळास रञ्चि। ३१।

सरलार्थ--विवाह के समय जिस प्रकार नारी बचपन के आभूषणों को त्यागकर नये आभूषणों को चाहती है, उसी प्रकार सीता ने बाल्य-क्रीड़ाओं को त्याग नयी क्रीड़ाएँ करने को मन किया। (३१)

बिभाकाळे—विवाह के समय; य़ेमन्ते—जिस प्रकार; मुञ्चि—त्यागकर; विभावना—विशेष इच्छा; तहिँरे—उसमें; रञ्चि—रचना करने को। (३१)

बसन्तदूत[1] ध्वनि कलाबेळे केते इंगित।
बसन्त[2] रागरे आळाप तहिँ करइ गीत। ३२।

सरलार्थ—बसन्तदूत कोयल जब बोलती थी, तब सीता उसकी बोली का उपहास करती हुई बसन्त राग में गीत गाती थीं। (सीता का स्वर कोयल की ध्वनि से अधिक मधुर तथा उत्कृष्ट था) (व्यतिरेकालंकार) (३२)

बसन्त[1]-दूत—कोयल; इंगित—उपहास; बसन्त[2]—राग विशेष। (३२)

बसन्त बसने[1] गण्ठिकि देइ कन्धे पकाइ ।
बसन्तवसन मोहिबि एहि गुमान बहि । ३३ ।

सरलार्थ–पीला वस्त्र पहने, उसके आँचल में गाँठ दिये, सीता उसको अपने कन्धे पर डालती थीं । उससे प्रतीत होता था मानो सीता इसी अभिमान से कि मैं किसी न किसी दिन विष्णु (रामचन्द्र जी) को मुग्ध करूँगी, आँचल में गाँठ लगाये रख रही हों । (३३)

बसन्तवसने[1]—पीले वस्त्र में; बसन्तवसन[2]—पीताम्बर; विष्णु—रामचन्द्र ।(३३)

बन्धन करे नाना छन्दे नीबी से पुनः पुनः ।
बन्धचित्रपट एकान्ते चाहिँबारे सुमन । ३४ ।

सरलार्थ–सीता नाना छन्दों में नीवी (कटिबंध) बारबार बाँधने लगीं । फिर चौसठ बन्ध-चित्रित चित्रपट को एकान्त में देखने के लिए मन किया । (३४)

नीवी—कटिबन्ध; चाहिँ बारे—देखने के लिए । (३४)

बन्दि[1] य़ाहाकु बड़ बोलि सउन्दर्य्ये धरारे ।
बन्दी[2] परि होइ रहिला अबराधे धरारे । ३५ ।

सरलार्थ–जिन सीता को संसार में सौन्दर्य में श्रेष्ठत्व देकर हम बन्दना करते हैं, ऐसी सीता यौवनकाल में पदार्पण करने पर अन्तःपुर में बन्दी हो कर रहने लगीं । (३५)

बन्दि[1]—बन्दना करते हैं; बन्दी[2]—कैदी; अवरोधे—अन्तःपुर में । (३५)

बत्सर नबरु दिनकु दिन प्रभा बढ़ाइ ।
बत्सरे कुच अंकुरित एहि उत्प्रेक्षा होइ । ३६ ।

बर्णमाळी परा रोमाळि कि से सरघापन्ति ।
बर्णनीय एहि, करन्ति कि से ऊर्द्ध् वकु गति? । ३७ ।

सरलार्थ–नौ वर्ष की अवस्था होने पर दिन-दिन सीता की प्रभा बढ़ने लगी । वक्ष पर कुचों ने अंकुरित होकर यह उत्प्रेक्षा धारण की–

वर्णमाला-सी सीता की रोमावली मानो मधुमक्खियाँ हैं जो ऊपर की ओर गति कर रही हैं। यह वर्णना के योग्य है। (३६-३७)

वत्सरनवरु—नौ वर्ष से; वत्सरे—वक्ष में, वर्णमाळी—अक्षरमाला, सरघापन्ति—मधुमक्खियाँ। (३६-३७)

बिकळना करि सञ्चन्ति मधुकल्पद्रुमरे।
विकळप, फळ अंकुरु भजे बृद्धिक्रमरे। ३८।

ब्रिजय होइला क्रमुकठारु ताळसरिकि।
विजय हृदरे स्वयम्भू रूपे कले शम्भु कि? । ३९।

सरलार्थ—स्तन रूपी कल्पद्रुम पर रोमावली रूपी मधुमक्खियाँ मानो मधु-संचय कर रही हों—यह विशेष रूप से अनुमान करना उचित है। अथवा उस कल्पद्रुम पर फल फले क्रमशः सुपारी से ताड़ के सदृश वृद्धि को प्राप्त हुआ है क्या? अथवा क्या स्वयंभू (जो स्वयं वर्द्धित होते हैं) शिव-लिंग हृदय पर विराजमान हुआ है? (३८-३९)

बिकळप—कल्पना; क्रमुक—सुपारी (३८-३९)

बळिश्रेष्ठ काम ताहाङ्क बाम कला प्रहार।
बळि बाटुळि कि स्तनाग्र रूपे से मनोहर। ४०।

सरलार्थ—सीता जी के श्यामवर्ण कुचाग्र को देखकर कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि बलवान् कन्दर्प ने जो शिव जी का शत्रु है, मानो गीली मिट्टी से गोले बनाकर स्तन-रूपी शिवजी को लक्ष्य कर के मारे। वे गोले स्तनों से टकरा कर नीचे गिर पड़ते। परन्तु वे अभी-अभी बनाये गये थे, इसलिए गीले तथा काले थे; वे काले तथा गीले गोले महादेव जी के शिर पर टकराकर जैसे वहाँ पर अटक गये हों। (४०)

बासरे य़तने घोड़ाइ चोळ कबच देइ।
बास अंगी स्मर भयरु रति सेवने स्नेही। ४१।

सरलार्थ—कन्दर्प के भय से स्तन-शम्भु की रक्षा करने के लिए सौरभांगी सीता ने उसे चोली रूपी कवच के द्वारा आच्छादित करके उस पर फिर वस्त्र ओढ़ा। और भी रति की सेवा में मनोयोग दरसाया।

(रति की सेवा से उसके पति कामदेव सन्तुष्ट होंगे; अर्थात् रति-रस में सीता का मन मज्जित होने लगा।) (४१)

बासरे—वस्त्र से; घोड़ाइ—ओढ़कर; बासअंगी—सौरभाङ्गी (सीता)। (४१)

बनधबकु ग्ने जिणिला कटी कृशता होइ।
बनधरकेशी किङ्किणी जयबाद्य बजाइ। ४२।

सरलार्थ—सीता की कटि ने क्षीणता में सिंह पर विजय प्राप्त की। इसलिए जलधर-केशी सीता ने किंकिणी रूपी जय बाद्य बजाया। (४२)

बनधव—जंगल का स्वामी सिंह; बनधर—जलधर, मेघ; वनधरकेशी—मेघ का सा वर्ण है जिनके केशों का (सीता)। (व्यतिरेक) (४२)

बळाहंसक नादे गति बड़ाइकि शुणाइ।
बळात्कारे मन्द सरणे गज हंस जिणाइ। ४३।

सरलार्थ—सीता का गमन सुन्दरता में गज और हंस की गति से बढ़ गया। जब वे मन्दगति करतीं, तो पैरों की पायजेब तथा नूपुरों की ध्वनि सुनाई पड़ती। मानो उस ध्वनि के जरिए सीता की गति की बड़ाई प्रगट हो रही हो। (अर्थात् उनकी गति हंस तथा गज की गति से धीरतर हुई।) (४३)

बळा—पैर की पायजेब (एक गहना); (?) हंसक—नूपुर; मन्दसरणे—धीर गति में; जिणाई—जीतती है। (व्यतिरेक) (४३)

बारणबृषा-गर्ब खर्ब करि ऊरु दीपित।
बारण दन्त-कुन्दा स्तम्भ कि कुंकुमलेपित। ४४।

सरलार्थ—उनकी दोनों जंघाओं ने केला वृक्ष के गर्व को खर्व करके दीप्ति प्रकाश की। (जंघाओं को देखकर ऐसा प्रतीत हुआ) मानो चिकनाये हुए हाथी-दाँत के खम्भों पर कुंकुम-लेप हुआ हो। (४४)

बारणवृषा—केले का वृक्ष, बारणदन्त—हाँतीदाँत। (व्यतिरेक और उत्प्रेक्षा) (४४)

बाहु-शोभा चाहिँ मृणाळ कण्टककु बहिला।
बाहुटि ताड़रे जाणिलि से पूजाकु पाइला। ४५।

सरलार्थ–बाहुओं की शोभा को देखकर मृणाल ने (असमान होने की वजह से) काँटे धारण किये। उन पर सीता ने बाजूबन्द तथा ताड़ आदि गहने पहने हैं। मानो वे गहने बाहुओं की पूजा कर रहे हों। (अथवा बाहुओं के संस्पर्श में आने की वजह से वे गहने स्वयं पूज्य तथा आदरणीय हुए।) (४५)

मृणाळ—पद्मनाल; बाहुटि—बाजूबन्द; ताड़रे—ताड़ों से; जाणिलि—मैंने (कवि ने) जाना; पाइला—पाया। (व्यतिरेक) (४५)

ब्रह्माण्डरे नाहिँ से हस्ततुळ कहिबा तर्के।
ब्रह्मा तेणु देला अतुळ करि नाम कटके। ४६।

सरलार्थ–सीता की हस्त-शोभा से तुलना करने के लिए संसार भर में कोई उपमा नहीं मिली। इसलिए ब्रह्मा ने उनके हस्त के स्वर्ण-कंकण को 'अतुल' नाम दे रक्खा है। कंकण के इस नाम से हस्तों की शोभा की अतुलनीयता प्रकट हो रही है। (४६)

से हस्ततुळ—उन हाथों की उपमा; कहिबा—(हम) कहेंगे; तेणु—इसलिए; देला—दिया; अतुल—हस्तालंकार (कंकण) का नाम, कटके—स्वर्णकंकण। (४६)

विभूषण भूषानिचय सर्व सुन्दरीङ्करे।
बिभु से जानकी अतुल तांकु आम्भे एठारे। ४७।

सरलार्थ–पृथिवी की समस्त सुन्दरियाँ नाना अलंकारों से भूषित हो कर भी सीता के समान नहीं हो सकतीं। इसलिए उन्होंने (अलंकारों ने) सोचा—"सीता हम लोगों की प्रभु हैं। हम उनकी बराबरी नहीं कर सकते।" (अलंकार समस्त स्त्रियों के भूषण हैं, इसलिए अधिक सुन्दर हैं। परन्तु उन अलंकारों ने सीता की सुन्दरता को देख कर सोचा—सीता हम लोगों की प्रभु हैं, हम लोगों के उनके भूषण होने की बात तो दूर रही, उनकी समानता तक नहीं कर सकते।) (४७)

भूषानिचय—अलंकार समूह; आम्भे—हम लोग; तांकु—उनको; एठारे—यहाँ पर। (४७)

बन्दिआमण्डने श्रबणे ताळपत्र घउड़ि।
बन्दिआ[२] नोहि कि से ग्रिब, ग्रेउँ नयन पड़ि। ४८।

सरलार्थ—उन्होंने तड़का (तरकी) नामक कर्णाभूषणों को निकाल-कर 'बँदिआ' नामक कर्णाभूषण अपने कानों में पहने। उन पर जो आँखें गड़ जायँगी, वह बन्दिनी बने बिना कहाँ जायँगी ? (उन कर्णा-भूषणों पर आँखें अटक जायँगी।) (४८)

बँदिआ—(देशज) कर्णाभूषण विशेष; ताळपत्र (देशज)—तड़का (तरकी) ('ताटंक' शब्दज) नामक कर्णालंकार; घउड़ि—निकालकर; बँदिआ—बन्दी, कैदी; नोहि—न होकर; ये उँ नयन—जो आँखें। (४८)

बाळी झलकादि सुफुल मल्लीकढ़ी विशेषे।
बाळी झलकाइ ये़मन्त कहि नोहिब शेषे। ४९।

सरलार्थ—सीता ने बाली, झलका, करनफूल तथा मल्लीकढ़ी आदि कर्णाभूषणों के द्वारा भूषित हो जिस अनिर्वचनीय शोभा को धारण किया, उसका शेषदेव अपने सहस्र मुखों से भी वर्णन नहीं कर सकते। (४९)

बाळी—कन्या (सीता); ये मन्त—जिस प्रकार; कहि नोहिब शेषे—शेषदेव से कहा नहीं जा सकता। (४९)

बन्धा सुमनरे जूड़ा ये़ धैर्य्य-उजुड़ा सेहि।
बन्धा सुमनकु पकाइ नेब के मुकुळाइ ? ५०।

सरलार्थ—नाना प्रकार के फूलों से मण्डित उनकी जूड़ा दर्शकों का धैर्य नाश करती थी। इसलिए एक ही बार उसे देखने पर उसमें बँध गये। मन को उस शोभा-दर्शन से लौटा लाना कठिन होता था। (५०)

सुमनरे—फूलों से; जूड़ा—बालों का बँधा हुआ समूह; बन्धा सुमनकु—बन्धे हुए अच्छे मन को। (५०)

बिशेषे चञ्चळ ईक्षण बाण से गतागत।
बिषे से ये़ुक्त कि अञ्जने ये़णु अति ज्वळित। ५१।

बाजिबार[1] भये कुरङ्ग मीन बने पळाइ।
बाजीबार[2] गतागत से गति शिखिबा पाइँ। ५२।

सरलार्थ—उनके उज्ज्वल कज्जल-रंजित नेत्रों की चंचल गति को विषदग्ध शर समझ कर इस भय से कि कहीं हमारे शरीरों में यह शर

चुभ न जाय, हिरनों ने जंगल में तथा मछलियों ने जल में प्रवेश किया। उनकी नेत्र-गति से समानता लाने के लिए घोड़े तथा पक्षी शीघ्रगति का अभ्यास करने लगे। (अर्थात् सीता जी के नेत्रों की गति हिरनों, मछलियों, घोड़ों तथा पक्षियों की गति से चंचलतर थी। (५१-५२)

येणु—चूँकि; बाजिबार[1] भये—बजने के भय से; कुरंग—हिरन; मीन—मछली; पळाई—भाग गये; बाजी बार[2]—घोटक समूह, पक्षिसमूह (यमक)। (५१-५२)

बर्त्तुळ मुकुता चळित नासा-पुड़ा य़े फुले।
बर्त्तु के ता चाहिँ आजन्म ब्रह्मचारी होइले। ५३।

सरलार्थ--साँस लेते समय सीता के नथुने फूल रहे हैं। फूलने वाले नथुनों के पास [नकबेसर का] गोल मोती हिल रहा है, उसको देखकर कौन ऐसा व्यक्ति है जो बचपन से ब्रह्मचारी होते हुए भी कन्दर्प के शराघात से बच पाएगा ? (५३)

बर्त्तुळ—गोल; नासापुड़ा—नथुने; बर्त्तु—बचे तो कोई ! (५३)

बन्धु करिबार इच्छिला य़ेणु अधर तुले।
बन्धुक नामहिँ रहिला तेणु रक्तक फुले। ५४।

सरलार्थ--सीता के अधरों से बन्धुत्व स्थापित करने के लिए दुपहरिया फूल ने इच्छा की। इसीलिए उसका नाम शायद 'बन्धुक' पड़ा हो ! (अर्थात् सीता के अधरों का वर्ण बन्धुक का सा लाल है।) (५४)

बन्धु करिबार—बन्धुता करने की; इच्छिला—इच्छा की; अधरतुले—अधरों के सहित; रहिला—रहा; तेणु—सो, इसलिए; रक्तक फुले—दुपहरिया का फूल। (५४)

बधुली-अधर बोलिबा य़ुक्त अर्थरे आन।
बधू करे तहिँ उपरे हास प्रकाशमान। ५५।

सरलार्थ--सीता के अधर बन्धुक फूलों के समान हैं। इसलिए उनको बन्धुकाधरा कहना युक्तियुक्त है तो सही, परन्तु वह अर्थ ठीक नहीं जँचता। क्योंकि वे अपने बन्धुक के सदृश अधरों पर जब हास्य प्रकाश करती हैं, तो उससे मालूम पड़ता है कि वे बन्धुक फूलों का उपहास करती हैं। इससे पुष्ट होता है कि बन्धुक (रक्तक, दुपहरिया का फूल) उनके अधरों (होंठों) से निम्न कोटि का है। (५५)

बधुली-अधर—बन्धूकों के समान लाल होंठों वाली; बोलिबा—बोलना; अर्थ आन—दूसरा अर्थ; बधू—सीता; तहिं उपरे—उस पर। (५५)

बिर्भात्ति मोतिपन्ति दन्त ओष्ठ-माणिक्यपात्रे।
बिभव शोभार के कहु ये बिचित्र बि चित्रे। ५६।

सरलार्थ--माणिक्य-निर्मित पात्र में मोती-पंक्ति रखने से जो शोभा प्रगट होती है, सीता जी के ओष्ठों के भीतर उनके दन्तों की वैसी शोभा दीखती है। ओष्ठ माणिक्य-पात्र तथा दन्त मोती-पंक्ति हैं। इसलिए प्रतीत होता है कि जिस सौंदर्य का उत्कर्ष चित्र में भी दिखाया नहीं जा सकता, उसका वर्णन भला कौन कर सकता है? (५६)

बिर्भात्ति—भरती करना, रखना; विभव—संपत्ति—(यहाँ उत्कर्ष); के कहु—कहे तो कोई!; ये विचित्र वि चित्रे—जिसे चित्र में भी दिखाना विचित्र (असम्भव) है। (५६)

बिभूषण नाना प्रकारे ये ते करन्ति निति।
बिभूषण परा तहिँकि दिशे सुन्दरी-ज्योति। ५७।

सरलार्थ--सीता हर रोज जिन सब आभूषणों से भूषित होती हैं उनकी शरीर-कान्ति उन सब आभूषणों का आभूषण सी दिखाई पड़ती है। (अर्थात् सीता आभूषणों का आभूषण हैं।) (५७)

बदनरे चन्द्र दर्पण पद्म निउञ्छाइबा।
बदनरे एहि उक्तिकि आन कि लक्ष्य देबा? ५८।

सरलार्थ--सीता जी के मुख के सौन्दर्य, कान्ति तथा सौरभ के सामने क्रमशः चन्द्र, दर्पण तथा पद्म तुच्छ हैं। इसलिए उनकी मुख शोभा इन उपमानों की वन्दना योग्य है; अतएव अन्य किसी वस्तु (उपमान) का नाम कह कर उनके मुख से उपमा देना उचित नहीं होगा। (५८)

निउञ्छाइबा—बन्दना कराएँगे। (५८)

वरवर्णिनी रसलता नब पुष्पबती से।
बरण करिबा जनक कहे यतिङ्क पाशे। ५९।

सरलार्थ--कुंकुमवर्णा शृंगाररस-स्वरूपा लता सीता ने यौवन

पदार्पण किया। तो "उनके स्वयम्वर के लिए हम राजाओं को निमन्त्रित करेंगे"—यह बात जनक जी ने ऋषियों से कही। (५९)

वरवर्णिनी—कुंकुमवर्णा; रसलता—श्रृंगाररस-स्वरूपा लता; पुष्पवती—युवती। (५९)

बाचिले बाल्मीकि टेकिब य़ेहु शिवचापकु।
बारिजगन्धाकु प्रदान निश्चें करिबा ताकु। ६०।

सरलार्थ--यह सुन कर वाल्मीकि मुनि ने कहा, "जो व्यक्ति शिवधनु उठाने में समर्थ होगा, हम उसे ही पद्मिनी सीता को प्रदान करेंगे। (६०)

बाचिले—कहा; टेकिब—उठाएगा; य़ेहु—जो; बारिजगन्धा—पद्मगन्धा; ताकु—उसीको। (६०)

बोध जनक हरधनु स्वयम्बर रचित।
बोधकर मुखे विख्यात, नृपगणे आगत। ६१।

सरलार्थ--हरधनु-सम्बन्धी प्रण से जनक जी सम्मत हुए और स्वयम्वर की व्यवस्था करने लगे। उन्होंने ख्यातनामा भाटों (चारणों) के द्वारा राजाओं को निमन्त्रण भेजा। (६१)

बोधकर—भाट, चारण। (६१)

बास करन्तु सेहि सीता-लीळा सदा मो हृद।
बाषठी पदे उपइन्द्र भञ्ज कहे ए छान्द। ६२।

सरलार्थ--उन्हीं स्वयंवरा सीता देवी की लीला हमेशा मेरे हृदय में जागृत रहे। यही प्रार्थना करते हुए बासठ पदों में उपेन्द्र भञ्ज ने इस छान्द को समाप्त किया। (६२)

॥ इति तृतीय छान्द ॥

चतुर्थ छान्द

राग-माळवगउड़ा

बुद्धि उत्तम ग़ाहार काव्य-अभिधाने,
बृजिन-नाश चरित शुण सावधाने । हे । १ ।

सरलार्थ–जिनका काव्य व अभिधान में उत्तम-प्रवेश है, वे पापक्ष
कर इस चरित को मन देकर सुनें । (१)

बृजिननाश—पापक्षयकर । (१)

बृष्टिहीन द्वादश बरष चम्पावती,
बड़ चिन्ता लभि लोमपाद नरपति । ग़े । २ ।

सरलार्थ–चम्पावती नगरी में बारह वर्षों तक वर्षा न होने के का
वहाँ के राजा लोमपाद को बड़ी चिन्ता हुई । (२)

बरषा करिब ऋष्यश्रृंग आगमने,
ब्रह्मज्ञान परि घेनि ग़ोगीन्द्र समाने । ग़े । ३ ।

सरलार्थ–जिस तरह श्रेष्ठ योगिगण ब्रह्मज्ञान को ही सत्य मानते
उसी प्रकार राजा लोमपाद ने इस कथा को सत्य मान लिया था कि ऋ
श्रृंग के आने पर ही वहाँ बारिश होगी । (३)

परि—तरह; योगीन्द्र—श्रेष्ठ योगी । (३)

बुलाइ निज नबरे पञ्चरत्नस्थाळी,
बज्र धरि शतमन्यु पराये से भळि । ग़े । ४ ।

सरलार्थ–ऋष्यश्रृंग को बुला लाने के लिए राजा ने पुरस्कार
घोषणा के स्वरूप अपने नगर में पञ्चरत्न-युक्त थाली घुमायी । इन्द्र
बज्रास्त्र के कारण जिस तरह दीप्तिमान दीखते हैं, उसी तरह
(हीरों) के द्वारा यह थाली दीप्तिमान दिखाई देती है । (४)

बज्र—इन्द्र का बज्रास्त्र, हीरा (श्लेष); शतमन्यु—इन्द्र । (४)

बिकाशरे पद्मराग सविता प्रतिभा,
बहिछि से मारकती होइ रति शोभा । ग्रे । ५ ।

सरलार्थ—वह थाली पद्मराग मणियों के तेज से तेजीयान दीखती है। मानो वह सूर्य हो। सूर्य, पद्म के प्रति अनुराग-प्रकाश-पूर्वक अपने तेज को उस पर निक्षेप करके उसे विकसित करते हैं। इस थाली में पद्मराग मणियों के जड़ित होने से यह 'पद्म-राग' अर्थात् पद्म के प्रति अनुराग रखनेवाले सूर्य की तरह तेजीयान हुई है। साथ ही, इसमें मरकत मणियाँ जड़ित हुई हैं। सुतरां मारकती अर्थात् मरकत-सम्बन्धी शोभा को धारण करने की वजह से इसने 'मार-कती' अर्थात् मार (कन्दर्प) के निकट में हमेशा रहने वाली रति की शोभा प्राप्त की है। (५)

पद्मराग—माणिक, पद्मप्रति स्नेह रखने वाले (सूर्य)—(श्लेष); सविता—सूर्य; मारकती—मरकत-सम्बन्धी, कन्दर्प की निकटवर्त्तिनी (रति)—(श्लेष)। (५)

बिद्रुमे महा उज्ज्वळ अटवी सदृश,
बहि गर्भे मोति शुक्ति, ए त्रिविध श्ळेष । ग्रे । ६ ।

सरलार्थ—उस थाली में अतिशय उज्जवल प्रवालों के रहने की वजह से वह ऐसे एक अरण्य की तरह दिखाई देती है जो कि नव पल्लव धारण करके अत्यन्त सुन्दर दीखता है। और भी, इसमें मोती रहने के कारण यह मोती-गर्भ सीप की तरह दीखती है। इस प्रकार इन तीन पदों में श्लेषार्थ हैं। (६)

विद्रुमे—प्रवालों से, नये पत्तों से (श्लेष); अटवी—अरण्य; शुक्ति—सीप। (६)

बेश्यासार जरता ता रता होइ नेला,
बनुँ आजन्मतपस्वी आणिबि बोइला । ग्रे । ७ ।

सरलार्थ—वेश्या-श्रेष्ठा जरता ने बड़े आग्रह से वह थाली ली और कहा, "मैं जंगल से आजन्म-ब्रह्मचारी उन्हीं ऋष्यश्रृंग को ले आऊँगी।" (७)

वेश्या-सार—वेश्याश्रेष्ठा; रता—आग्रहान्विता; नेला—ली; आणिबि—लाऊँगी; बोइला—बोली। (७)

बृषभ गोड़ाइ धेनु पछरे ग्रेमन्त,
बेदाध्ययन छड़ाइ आणिबि तेमन्त । ग्रे । ८ ।

सरलार्थ—"जिस प्रकार साँड गाय के पीछे-पीछे दौड़ आता है, उसी प्रकार मैं उनका वेदाध्ययन छुड़ाकर उन्हें अपने पीछे दौड़ा ले आऊँगी।" (८)

येमन्त—जिस तरह; तेमन्त—उस तरह। (८)

वर्द्धकी डकाइ सजड़ाइ दिअ नाब,
बेश्म परि महामनोरम होइथिब। ये। ९।

सरलार्थ—बढ़ई को बुलाकर उससे अत्यन्त सुन्दर घर जैसी एक नौका बनवा दो। (९)

बर्द्धकी—बढ़ई; डकाइ—बुलाकर; बेश्मपरि—घर के माफ़िक। (९)

बिबिध पदार्थ भर्त्ति करिदिअ तहिँ,
बन रचनाहिँ होइथिब, भूपे कहि। ये। १०।

सरलार्थ—"उसमें विविध पदार्थ भरकर ठीक एक जंगल के समान करा दो"—ये बातें जरता ने राजा से कहीं। (१०)

बचस्कर नृपति सामन्ते भृत्यपरि,
बार बारनारी गले अनुकूळ करि। ये। ११।

सरलार्थ—लोमपाद राजा ने उस वेश्या की आज्ञा का पालन वैसे किया था जैसे कि नौकर अपने प्रभु की आज्ञा का पालन करता है। जरता ने बारह वेश्याओं के सहित अपनी यात्रा अनुकूल कर दी। (११)

बचस्कर—आज्ञावह; सामन्त—प्रभु, मालिक; भृत्य—नौकर; बार बारनारी—बारह वेश्याएँ। (११)

बसिले तरणी-अङ्के छाया परा होइ,
बिराजिबा पुष्कर गमने से ग्रोगाइ। ये। १२।

सरलार्थ—वे वेश्याएँ नौका में वैसे बैठीं मानो छायादेवी सूर्य की गोद में बैठी हों और नौका पर जाते समय चलते हुए पद्मों की तरह दिखाई दीं। (१२)

तरणी—नौका, सूर्य (तरणि) (श्लेष); अंके—गोद में; पुष्कर—कमल, पद्म; (१२)

बिख्यात उडुप नाम युक्त ताराळिरे,
ब्यग्रवन्त गति करे निशि दिवसरे । ये । १३ ।

सरलार्थ—चन्द्र तारागण से वेष्टित होकर उडुप के नाम से विख्यात हैं। नौका का एक नाम उडुप भी है। और भी, वह तारालि अर्थात् सुन्दरी वेश्याओं से वेष्टित होकर चन्द्र के समान शोभा धारण करती है। परन्तु पार्थक्य यही है कि चन्द्र केवल रात में गति करते हैं और यह नौका दिन तथा रात, हमेशा अति शीघ्र गति करती है। (१३)

उडुप—चन्द्र, नौका; ताराळि—तारों का समूह, सखीगण (वेश्यासमूह); (श्लेष); व्यग्रवन्त—अति शीघ्र। (१३)

बेनि कूळे महारण्य सत्यवाके[1] हीन,
विघन पशुसमूहे सत्यवाके[2] पूर्ण । ये । १४ ।

सरलार्थ—जिस नदी में वह नौका चल रही है, उस नदी के दोनों किनारों में काकशून्य, पशुओं से भरपूर और ऋषियों से पूर्ण महारण्य है। (१४)

बेनिकूळे—दोनों किनारों में; सत्यवाके[1]—कौवों से; सत्यवाके[2]—ऋषियों से (यमक और विरोधाभास अलंकार)। (१४)

बाजीगम्य स्थान नोहे सर्व समयरे,
बाजीराजि क्रीड़ा करे विगत भयरे । ये । १५ ।

सरलार्थ—वह अरण्य इतना घन है कि उसमें अश्वारोही शिकारी का प्रवेश तो दूर रहा, यहाँ तक शर (वाण) भी घुस नहीं सकता। इसलिए चिड़ियाँ वहाँ निडर होकर क्रीड़ा करती हैं। (१५)

बाजीगम्य—अश्वारोही या शिकारी के प्रवेशयोग्य; बाजीराजि—पक्षियों का समूह। (१५)

विश्राम आश्रम केते दूरे नाव करि,
बामाक्षी काममोहिनी घेनि बारनारी । ये । १६ ।

बाहारे रखि जरता चामरकेशीकि,
बिलोकि एमन्त बन, एमन्त ऋषिङ्कि । ये । १७ ।

विपर्य्यय पलाशीरे[१] पलाशीरे[२] घन,
बिनातप प्रभातप प्रभारे प्रधान । ये । १८ ।

बिभूति-बाञ्छक[१] नोहि, बिभूति-बाञ्छक[२],
बर्जित काम उदय, काम उदयक । ये । १९ ।

बल्लरी अन्तरे याइँ आरम्भिले गीत,
बल्लकी बजाइ कले सप्तस्वर जात । ये । २० ।

बिचारि राग सराग मुनिर जन्माउँ,
बृद्धि पञ्चशरकु पञ्चम स्वर देउँ । ये । २१ ।

सरलार्थ—बामाक्षी, काममोहिनी आदि वेश्याओं ने चामरकेशी जरता के साथ नौका को आश्रम की थोड़ी दूरी पर रख कर तपोवन में प्रवेश-पूर्वक देखा कि वह वन सिंहों, बाघों आदि हिंस्र पशुओं से शून्य है। वृक्षसंकुल होने के कारण उसमें सूर्य की किरणें नहीं पड़तीं । ऋषियों के तप: के प्रभाव से वह वन पवित्र है। वहाँ के निवासी मुनि लोग ऐश्वर्य के प्रति अनिच्छुक तथा भस्माभिलाषी हैं। समस्त इन्द्रिय-जनित सुखों का परित्याग-पूर्वक वे मुक्ति की कामना कर रहे हैं। ऐसी हालत में ऋष्यश्रृंग को अपनी-अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उन वेश्याओं ने लताओं की ओट में रहे हुए सप्तस्वरों में वीणा बजाकर गीत गाये । उन्होंने सोच-विचार करके यह निर्णय किया था कि गीतों का राग मुनि के हृदय में हम लोगों के प्रति अनुराग उत्पन्न करेगा और पञ्चम स्वर कामशक्ति को बढ़ाएगा । (१६ से २१)

विपर्य्यय—शून्य; पलाशी[१]—मांसभोजी प्राणी; पलाशी[२]—वृक्ष; (यमक) बिनातप—सूर्यकिरणशून्य; प्रभातप—तपस्या का तेज; विभूति-वाञ्छक[१]—धनकामी विभूति-वाञ्छक[२]—भस्माभिलाषी; वर्जित काम—इन्द्रियसुख-परित्यागपूर्वक; काम उदयक—मुमुक्षु, मुक्तिकामी; (यमक और विरोधाभास); बल्लरी—लता; बल्लकी—वीणा; पञ्चशर—कन्दर्प, काम । (१६ से २१)

बिटपीकि[१] मुनिमणि[१] आउजि ये थिले,
बिटपीङ्कि[२] मुनि मणि[२] सम्भावना कले । ये । २२ ।

बसाइ आसनें पुच्छे काहिँ तपिगण,
बस मठ[१] करि, कह मठ[२] न करिण । हे ! २३ ।

बखाण कि कि मन्त्रकु जप करि जाण,
बिष्णु, शिव सेवा काहा भावरे निपुण । हे ? २४ ।

सरलार्थ—मुनिश्रेष्ठ ऋष्यश्रृंग उस तपोवन में किसी वृक्ष को पीठ लगाकर बैठे हुए थे । इन वेश्याओं को उन्होंने मुनि समझा और आदर-पूर्वक उन्हें बुलाया और आसनों पर बैठाया । तब उन्होंने पूछा, "विलम्ब किये बिना शीघ्र बताइए कि आप लोगों का मठ कहाँ है ? कौन सा मन्त्र आप लोग जप करते हैं ? विष्णु अथवा शिव—किनकी उपासना किया करते हैं ?" (२२-२४)

बिटपीकि[1]—वृक्ष को; आउजि—पीठ लगाकर; मुनिमणि[1]—मुनिश्रेष्ठ; बिटपीङ्कि[2]—वेश्याओं को (यमक); मुनि मणि[2]—मुनि समझकर (यमक); बसाइ—बैठाकर; काहिँ—कहाँ; वस—वास करते हो; मठ[1] करि—मठ बनाकर; मठ[2] न करिण—बिलम्ब न करके ('मठ' में यमक); बखाण—वर्णन करो; काहा भावरे—किनके भक्तिवाव में । (२२-२४)

बिकाशि हासकटाक्ष ढाळिण रसिका,
बोइले गेलाइ होइ फुलाइ नासिका । ग्रे । २५ ।
बने तुम्भे भ्रम, आम्भे बनीरे बिळसुँ,
बनौका तुम्भे, बनिता आम्भेटि ए बशु । ग्रे । २६ ।
बोलिबार राममन्त्र आद्यवर्ण भिन्न,
बिसर्ग चतुर्थ वर्ण एक करि घेन । ग्रे । २७ ।

सरलार्थ—ऋषि की यह बात सुनकर वेश्याओं ने हास्य प्रकाश करते हुए, कटाक्ष डाल तथा नाक फुलाकर दुलार के साथ कहा, वन में वास करने के कारण तुम 'वनौका' (ऋषि) कहलाते हो । उसी तरह वनी (उपवन) मैं वास करने के कारण हम लोग वनिता कहलाती हैं । तुम राममन्त्र (रामाय नमः) जप करते हो । हम लोग भी वही मन्त्र जपती हैं । परन्तु अन्तर इतना ही है कि हम लोगों के मन्त्र में 'रा' के स्थान पर 'का' होता है । (अर्थात् हमलोग 'कामाय नमः' यही मन्त्र जपती हैं ।) आद्य वर्ण के इसी परिवर्त्तन को छोड़कर दोनों के विसर्ग सहित अन्य चार वर्ण परस्पर समान हैं । (२५ से २७)

रसिका—वेश्याओं ने; गेलाइ—दुलार कर; वनी—उपवन; वनौका—वनवासी (ऋषि) । (२५ से २७)

बसन्ति आम्भ देवता शम्भु हृदस्थळ,
बक्षोरुह उरे य़ोड़ि शीघ्रे कला कोळ। य़े। २८।

सरलार्थ—इसके अनन्तर काममोहिनी नामक वेश्या ने यह कहते हुए कि हम लोगों के आराध्य देवता शिव जी हम लोगों के वक्षों पर विराजमान हैं, अपने स्तनों को ऋषि के वक्ष पर लगाकर उनको आलिंगन किया। (२८)

शम्भु—शिव; वक्षोरुह—स्तन; उर—छाती, बक्षस्थल। (२८)

बिभूति आम्भ देशर बोलि ततपर,
बोळि देला चूरि काममोहिनी कर्पूर। य़े। २९।

सरलार्थ—काममोहिनी ने फिर कर्पूरचूर—यह कहकर कि "यह हमारे देश का भस्म है", उसे ऋषि की देह में लगा दिया। (२९)

बासान्तर करि ऋषि देखुँ पयोधर,
बोइले हे हर हर! मोते कृपा कर। हे। ३०।

सरलार्थ—वस्त्र खोलकर स्तन देखते ही ऋषि बोल उठे, "हे महादेव! मुझ पर दया करो।" (३०)

वासान्तर करि—वस्त्र खोलकर; देखुं—देखते ही; हर—महादेव। (३०)

बिलीन बेनि अर्थकु बिहुँ से बचने,
बिधान कला मुखरे चुम्बने चुम्बने। य़े। ३१।

सरलार्थ—परन्तु उसमें "हे हर-हर!" अर्थात् "हे हर-धैर्यलोपकारी कन्दर्प! मेरी रक्षा करो"—ऐसा एक द्वितीय अर्थ भी प्रच्छन्न रूप में था। काममोहिनी ने इसी द्वितीय अर्थ को उचित अर्थ समझकर, ऋषि के मुख पर बार-बार चुम्बन दिया। (३१)

विलीन—अति गुप्त; बेनि अर्थ को—द्वितीय अर्थ को। (३१)

बनीफळ कहि पक्व कदळी भुञ्जाइ,
बाण पयःपेटी पयः पान से कराइ। य़े। ३२।
बोधि चित्त ए आम्भ निर्झर नीर कहि,
बृष्यकारी कामराज अधाम पूराइ। य़े। ३३।

बाढ़िले ये घृतपक्व आमिक्षा अग्रते,
वर्ण पुच्छे कि, भोजन कर से बोलन्ते । ये । ३४ ।

सरलार्थ–अनन्तर वेश्याओं ने "ये उपवन के फल हैं" यह कहकर ऋषि को खाने के लिए पके हुए केले दिये और "यह हमारे देश का झरना (पानी) है"–यह कहकर नारियल का पानी पीने के लिए दिया। कुछ समय के बाद बलबर्द्धक तथा कामोद्दीपक मलाई, छेना आदि सामने परिवेषण करके ऋषि से खाने के लिए अनुरोध करने पर ऋषि ने उनसे उनकी जाति पूछी। (३२ से ३४)

वाणपयःपेटी—बाँका (छोटा) नारियल; पयः—जल; वृष्यकारी—बलकारक; आमिक्षा—छेना। (३२ से ३४)

विप्र तुम्भे, आम्भे य़ाहा बोलाउँ ता शुण,
विप्रलब्धा घेनि अष्ट जातिरे निपुण । ये । ३५ ।

सरलार्थ–वेश्याओं ने कहा, तुम 'विप्र' (ब्राह्मण) हो; हम लोग विप्रलब्धा आदि आठ प्रकार की नायिकाओं के लक्षणों में निपुण हैं। (३५)

बाळिकाए बोलुँ मुनि भुञ्जि स्वाद पाइ,
बटु ! तुम्भ तप धन्य बोलि प्रशंसइ । ये । ३६ ।

सरलार्थ–वेश्याओं के इस प्रकार कहते हुए मुनि सारी चीजें भोजन करने लगे और उनका स्वाद पाकर प्रशंसा की, "हे बटुओ (ब्राह्मणो) ! तुम लोगों की तपस्या धन्य है।" (३६)

बटु—ब्राह्मण। (३६)

बटु य़ाहा बोइल प्रमाण अनुस्वारे,
वात्स्यायन शास्त्र-पढ़ा गुरु छन्ति दूरे । ये । ३७ ।

सरलार्थ–ऋषि की यह बात सुनकर वेश्याओं ने कहा, "हम लोगों को आपने जो 'बटु' सम्बोधन किया, वह अनुस्वार (ं) के योग से प्रमाणित होगा। (अर्थात् हम लोग पुरुषों को 'बटुं' अर्थात् ठगती हैं।) कामशास्त्र में निपुण हम लोगों की गुरु इस स्थान से थोड़ी दूरी पर हैं।" (३७)

वात्स्यायन-शास्त्र—कामशास्त्र; छन्ति (अछन्ति)—हैं। (३७)

बेळास्त हेबार जाणि, मेलाणि हेलुटि,
बार मुखे भाषि उठुँ, गले से पाछोटि । ये । ३८ ।
बाटे रहि रहि कहि गले बाराङ्गना,
बाहुड़िबा हेउ, आम्भे कालि आसुँ सिना । ये । ३९ ।
विह्वळिते आसिबारे कराइ नियम,
बाहुडिले ऋष्यश्रृंग आपणा आश्रम । ये । ४० ।

सरलार्थ–इस समय सूर्य को अस्तगामी होते देखकर बारह वेश्याओं ने ऋषि से विदा लेने की बात कही । तब ऋषि उन्हें विदा देने के लिए कुछ दूर तक गये । उन्होंने रास्ते में ऋषि से कहा, "आप लौट जाइए, हम लोग कल फिर आएँगी ।" ऋष्यश्रृंग ने विह्वल होकर उनसे निश्चय आने का शपथ कराया और आश्रम को वापस आये । (३८ से ४०)

मेलाणि—विदा; गले से पाछोटि—वे विदा देने गये; बाहुड़िबा हेउ—आप लौटिए; आसुँ—आएंगी; सिना—निश्चयबोधक अव्यय; बाहुडिले—लौटे । (३८ से ४०)

बहित्र-प्रतिम नावे प्रवेश नागरी,
व्यवसाय-चय कहि व्यवस्थित करि । ये । ४१ ।

सरलार्थ–वहित्र अर्थात् जहाज-सदृश सुन्दर उसी नौका में वेश्याओं ने प्रवेश किया एवं 'व्यवसाय-चय' अर्थात् ऋषि के साथ अपनी-अपनी जो घटनाएँ घटी थीं, जरता से सब बताईं । (४१)

बिभाण्डक आसि पुच्छे जानुरे बसाइ,
बिषाण-ऋष्य अंगरु सुबासकु पाइ । ये । ४२ ।

सरलार्थ–विभाण्डक ऋषि ने तपस्या-स्थल से लौट कर ऋष्यश्रृंग को अपनी गोद में बैठाया और उनके शरीर से सुगन्ध का अनुभव करके उनसे उसका कारण पूछा । (४२)

विषाणऋष्य—ऋष्यश्रृंग । (४२)

बकता सकळ कथा, कितबे भाषित,
विभावरी-चरी से भक्षन्ति तपिसुत । ये । ४३ ।

व्यवहार कले निश्चें ताहाङ्क सङ्गरे,
बाबु, हैबु अग्नि प्रीति पतंग प्रकारे । य़े । ४४ ।

सरलार्थ—ऋष्यश्रृंग ने पिता को सारी बातें कह सुनाईं। तब विभाण्डक ने पुत्र से कपट (श्लेष) से कहा, "वे सब निशाचरियाँ (राक्षसियाँ) हैं। ऋषिपुत्रों को भक्षण करती हैं। अरे वस्त ! उनके साथ अगर तुम व्यवहार करोगे, तो अग्नि में पतंगों के समान जल मरोगे। (४३-४४)

बकता—बोले; कितबे—कपट से, श्लेष से; विभावरी-चरी—राक्षसी। (४३-४४)

बिरोधोक्ति जनकर न घेनिले लब,
बुजिले नेत्र स्वपने देखे सेहि भाव । य़े । ४५ ।
बिभावरी अन्त तात तपस्थाने गत,
बश करिथिले रामा छन्न मुनिसुत । य़े । ४६ ।

सरलार्थ—ऋष्यश्रृंग ने पिता के निषेध-वाक्यों का लेशमात्र ग्रहण नहीं किया। सोते समय स्वप्नों में केवल उन्हीं वेश्याओं के भावों को देखते रहे। प्रभात होने पर विभाण्डक जगकर तपस्थल चले गये। वेश्याओं ने मुनिसुत ऋष्यश्रृंग के मनोराज्य को यहाँ तक अधिकृत कर लिया था कि उनका मन चंचल होने लगा। (४५-४६)

विरोधोक्ति—निषेध-वाक्य; न घेनिले—ग्रहण नहीं किया; लव—लेशमात्र; बुजिले नेत्र—आँखें मूँदने पर (सोने पर)। (४५-४६)

बिप्रलम्भ श्रृंगार य़े उदय मानस,
बाञ्छे पुनः पुनः रामा चुम्बन आश्ळेष । य़े । ४७ ।

सरलार्थ—वेश्याओं के वियोग से ऋष्यश्रृंग के मन में 'विप्रलम्भ श्रृंगार' भाव का उदय हुआ। सुतरां उन्होंने उनके चुम्बन तथा आलिंगन की पुनः पुनः इच्छा की। (४७)

बाञ्छे—इच्छा की; रामा—वेश्याओं की; आश्ळेष—आलिंगन। (४७)

बारबार आश्ळेषरे न आसे चुंकार,
बनप्रिय डाकुँ कर्ण्ण टेकइ सत्वर । य़े । ४८ ।

सरलार्थ—ऋषि के मन में बार-बार आलिंगन का भाव बढ़ उठने से चुम्बन देने का शब्द उच्चारित नहीं हुआ। कोयल की बोली सुनकर ऋषि उस तरफ कान दे रहे थे। कहीं वेश्याएँ न पुकार रही हों। (४८)

वनप्रिय—कोयल; डाकुं—बोलने पर। (४८)

बाह प्राय गति करि पुणि लेउटइ,
बळीवर्द्द ग्रथा ऋतु धेनुकु इच्छइ। ग्रे। ४९।

सरलार्थ—उनके गये हुए मार्ग में ऋषि घोड़े की तरह कुछ दूर दौड़ते और फिर लौट आते थे एवं ऋतुमती गाय को प्राप्त करने की आशा से बैल (साँड) जिस प्रकार इधर-उधर दौड़ता है, ऋषि भी इधर-उधर होने लगे। (४९)

बाह—घोड़ा; धेनु—गाय। (४९)

बळाध्वनि करि घेनि झिकारि झंकार,
बातायु डाळिघण्टिरे वश परकार। ग्रे। ५०।

सरलार्थ—ऋषि झींगुरों की ध्वनि को वेश्याओं की पाजेबों की ध्वनि समझकर उसे वैसे ही आग्रह के साथ सुन रहे थे, जैसे हिरन काष्ठघण्टी की ध्वनि को मन दे कर सुनता है। (५०)

बातायु—मृग, हिरन; डालघण्टी—लकड़ी की घण्टी। (ओड़िआ में इसे 'टिपा' कहते हैं) (५०)

बिन्धिबा आरम्भि आणु मनोज-पुळिन्द,
बाचाळ प्राय जनम हेउछि उन्माद। ग्रे। ५१।

सरलार्थ—कन्दर्प रूपी शवर के ऋषि की ओर पुष्पशर मारने से पागल की तरह ऋषि का चित्त-विभ्रम संघटित हुआ। (५१)

बिन्धिबा—बिंधना; मनोज-पुळिन्द—कन्दर्परूपी शवर; (शवर—शिकारी के अर्थ में); बाचाळ—पागल। (५१)

बढ़िबारु बेळुंबेळ प्रेमनदी तहिँ,
बुड़ नाहिँ चेता तृण पराय भासइ। ग्रे। ५२।

सरलार्थ—ऋषि के मन में उतके प्रति जो प्रेम पैदा हुआ था, वह

नदी का रूप धारण करके धीरे-धीरे बढ़ने लगा। उस प्रेम-नदी में ऋषि की चेतना डूबने के बजाय घास की तरह उतरा उठी। (अर्थात् वे कन्दर्प की पीड़ा से अचेत होने के बजाय सचेत थे।) (५२)

तृण पराय—घास की तरह; भासइ—उतरा उठी। (५२)

बिळम्ब काहिँकि बेगे आस बेगे आस,
बेळ बळि गले मिथ्या हेउछिटि भाष। ग्ने। ५३।
बोलि बोलि आश्रम प्रान्तकु से ग्ने गले,
बृक्षारूढ़े आसिबार पथ निरीक्षिले। ग्ने। ५४।

सरलार्थ—ऋषि, कन्दर्प के शराघात से पागल हो उठे थे। इसलिए कभी बोल उठते, "देर क्यों कर रही हो? शीघ्र आओ। नियत समय बीत जाने पर तुम लोग मिथ्यावादी जो होगी।" यह बोलते हुए आश्रम के प्रान्त को चले गये और पेड़ पर चढ़ कर उनके आने की राह को जोहने लगे। (५३-५४)

व्यथित हेबार तपोधन पुण्यु आसि,
बरचतुरी देखन्ति कुञ्जोदरे पशि। ग्ने। ५५।

सरलार्थ—इस समय ऋषि के पुण्यबल से चतुरी वेश्याएँ वहाँ आ पहुँची और लता-कुञ्ज की ओट में ठहरकर ऋषि के दुःख देखने लगीं। (५५)

बरचतुरी—वेश्याएँ; कुञ्जोदरे—लताभ्यन्तर में। (५५)

बिस्मय चित्तु तेजिले चाहिँ वश हेबा,
बारण परि रे तरी-टोपे पकाइबा। ग्ने। ५६।
बोधिद्रुम-दळ तुल्य तनुभोग देइ,
बिक्रय करिबा नृपतिरे धन पाइ। ग्ने। ५७।

सरलार्थ—ऋष्यशृंग को ऐसी हालत में देख वेश्याओं ने अपने-अपने हृदय से विस्मय (सन्देह) परित्याग-पूर्वक यह निश्चय किया कि ऋषि हम लोगों के वशीभूत हो पड़े हैं, और यह तय किया कि हाथी के समान इन मुनि को नौका रूपी गड्ढे में डालकर अश्वत्थ-पत्र के समान हम लोगों के

शरीरों को भोग निमित्त दान करके लोमपाद राजा को बेच देंगी और धन पाएँगी। (५६-५७)

विस्मय—आश्चर्य, सन्देह; बारण परि—हाथी की तरह; तरी-टोपे—नौका रूपी गड्ढे में; पकाइबा—डालेंगी; बोधिद्रुमदल—अश्वत्थ-पत्र। (५६-५७)

बाहारिले पाञ्चि तरुणीए लता मध्युँ,
बिलोकि पाशे मिळिले से आजन्मसाधु। य़े। ५८।

बाहु छन्दाछन्दि काममोहिनी सङ्गर,
बिकार अधिके चुम्बे पुलक सञ्चार। य़े। ५९।

सरलार्थ—यह सोचकर युवतियाँ लताकुञ्ज से निकलीं। आजन्म-ब्रह्मचारी ऋष्यश्रृंग उन्हें देखकर उनके निकट आ पहुँचे और बाहुबन्धन से काममोहिनी को आलिंगन करने से उनका कामविकार बढ़ गया और चुम्बन देने से शरीर में पुलक उत्पन्न हुआ। (५८-५९)

बोइले जरता गुरु लोभित दर्शने,
बिजे कर थरे उटजकु कृपामने। य़े। ६०।

सरलार्थ—वेश्याओं ने ऋषि से कहा, "हम लोगों की गुरु 'जरता' आपके दर्शन के लिए आग्रह प्रकाश कर रही हैं। दयापूर्वक आप एक ही बार हम लोगों के नौकारूपी पर्णकुटीर पर विराजिए।" (६०)

उटज—पर्णकुटीर, झोपड़ी। (६०)

ब्रह्मवश रतिशास्त्र ताठारु जाणिब,
बिह्वळे सम्मत करि चळिले से जब। य़े। ६१।

सरलार्थ—"हम लोगों की गुरु से आप महानन्ददायक रतिशास्त्र-शिक्षा प्राप्त करेंगे।" ऋषि उनकी इस बात से सम्मत होकर विह्वलता से उनके साथ शीघ्र चले। (६१)

ब्रह्मवश रतिशास्त्र—महानन्ददायक रतिशास्त्र; जव—शीघ्र। (६१)

बिक्रमि नउकारे प्रवेश हेबा चाहिँ,
बारि भरि झरी पाद धोइ तुम्बी कहि। य़े। ६२।

सरलार्थ—ऋषि को नौका में प्रविष्ट होते देख, जलपूर्ण झारी लाकर वेश्याओं ने ऋषि के पैर धो दिये और वह झारी दिखाकर कहा कि यह हम लोगों की तुम्बी है। (६२)

बिक्रमि—जाकर; बारि—जल। (६२)

बळ्कळ बोलि पिन्धाइ कौशेय वसन,
ब्याघ्रचर्म भ्रमरे सिन्धुआ शय्यामान। ये। ६३।

बिबिध स्वादु पदार्थ कराइ अशन,
बसाइ चूळ कुसुमे चन्दन लेपन। ये। ६४।

बसिला ओळगि पाशे जरता सुमुहीं,
बेष्टिता लता पादपे परा कोळ बिहि। ये। ६५।

सरलार्थ—जरता ने ऋषि को प्रणामपूर्वक बल्कल कहकर एक रेशम वस्त्र पहना दिया और व्याघ्रचर्म कहकर कोमल पट्टवस्त्रों की शय्या पर उन्हें बैठाया, उन्हें विविध स्वादु पदार्थ खाने को दिये। उनकी जूड़ा को फूलों की माला से बाँध शरीर पर चन्दन लगा दिया। अनन्तर जरता ने ऋषि को अपनी भुजाओं से आलिगन किया, जिस प्रकार लता वृक्ष को वेष्टित करती है। (६३ से ६५)

बल्कल—पेड़ की छालें; कौशेय वसन—रेशम-वस्त्र; सिन्धुआ—एक प्रकार का पट्ट वस्त्र; अशन—भोजन; पादप—वृक्ष। (६३ से ६५)

बिज्ञा से प्रथम रसे चन्द्र चाळि देला,
विज्ञाने ऋषिकुमार उत्ताने शोइला। ये। ६६।

सरलार्थ—शृंगाररसपण्डिता जरता के चन्द्रचालन करने से ऋषि मोहित हो पीठ के बल सोये। (६६)

विज्ञा—पण्डिता; प्रथमरस—आदिरस; विज्ञाने—अचेतन होकर; उत्ताने—उद्ध्वंमुख, पीठ के बल। (६६)

विधुनन आरम्भिला पुरुषायितरे,
वनपति उपरे हरिणी लीळा करे। ये। ६७।

बैश्वानर परे नृत्य करे शुभ्रापाङ्गी,
बिषम समस्याहिँ पूरण श्ळेषभङ्गी। ये। ६८।

सरलार्थ—जरता ने अब विपरीत रति शुरू कर दी। ऋषि पर उसके क्रीड़ा करते समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो सिंह पर मृगी, अग्नि पर स्वाहा देवी अथवा विष्णु पर लक्ष्मी नृत्य कर रही हों। इन दो पदों में कवि ने श्लेष छटा से विषम समस्याएँ पूरी कीं। (६७-६८)

विधुनन—रति; पुरुषायित—विपरीत रति; वनपति—सिंह, ऋषि; हरिणी—मृगी, हिरनी, हरिणाक्षी (श्लेष); वैश्वानर—अग्नि (अग्नि तुल्य ऋषि), परमात्मा, विष्णु; शुभ्रापांगी—स्वाहादेवी, लक्ष्मी; (श्लेष) (६७-६८)

बसुँ चेता, भावे अनअनुभवी य़ुबा,
बिबुधाळय सुख य़े सेहि एहि अबा । य़े । ६९ ।
बाजिणी किंकिणी बाद्य ताळिताळि स्वन,
ब्याख्यान ध्वनि श्ळेष से करइ प्रधान । य़े । ७० ।

सरलार्थ—रति-सुख में एकान्त अनभिज्ञ युवक ऋष्यश्रृंग ने सुधि में आकर इसको स्वर्गसुख समझा और किंकिणी-नाद को बाद्य-ध्वनि, करताड़न शब्द को करताली शब्द और जरता से प्रकाशित शब्द को संगीत के आरम्भ-कालीन तान समझा । (६९-७०)

बिबृद्ध हुअइ सेहि स्मरनामा हृदे,
बादे बेणी हार नाचे निश्चय से बाद्ये । य़े । ७१ ।

सरलार्थ—ऋषि के हृदय में कन्दर्प-विकार धीरे-धीरे बढ़ने लगा और किंकिणियों के बजने से जरता की वेणी तथा हार दोनों आपस में विवाद करके नाचने लगे । (अर्थात् जरता के गाढ़ रति में निमज्जित होने से वेणी तथा हार बड़े जोर से हिलने लगे । (७१)

स्मरनामा—कन्दर्प । (७१)

बाहिले सलिळरथ कैवर्त्ते सेकाळे,
बाहुक प्राये से दण्ड धारणे दिशिले । य़े । ७२ ।

सरलार्थ—उस समय केवट लोग नौकारूपी रथ खेने लगे । जब उन लोगों ने अपने-अपने हाथों से बल्ले पकड़े, तो वे सारथियों के समान दिखाई दिये । (यहाँ पर नौका की जगन्नाथ महाप्रभु के रथ सहित तुलना की गयी है और केवटों की सारथियों सहित तुलना की गयी है । महाप्रभु की रथ-यात्रा का दृश्य उपमा तथा रूपक अलंकारों में प्रदत्त है ।) (७२)

कैवर्त्ते—केवट लोग; सलिळ-रथ—जलगामी रथ, नौका; बाहुक—सारथि; दण्ड—खेने के बल्ले । (७२)

बीचि रज्जु, मीन-कूर्म झिङ्काजन य़ोखे,
बेनिरोधे मृगमृगी, नरनारी देखे । य़े । ७३ ।
बस्त्रकुश्वा चिराळ चामरे से मण्डन,
बिस्तृति रूपक रथय़ात्रार समान । य़े । ७४ ।

बासर निशा हेबार जणा नोहे तहिँ,
बामा द्वादशे खटन्ति रतिरसे मोहि । ग्रे । ७५ ।

सरलार्थ—जगन्नाथ जी के रथ में रस्सियाँ लगी रहती हैं। इस जलगामी रथ में उसी तरह लहरें रस्सियों के समान लगी हुई हैं। उनके रथ को बहुत लोग खींचते हैं। इस रथ को मछलियाँ तथा कछुए खींच रहे हैं। उनके रथ को अनेक नर-नारियाँ देखते हैं। इस रथ को नदी के दोनों किनारों पर मृग-मृगियाँ तथा नर-नारियाँ देख रहे हैं। उनका रथ पताकाओं तथा चामरों आदि से मण्डित है। यह रथ भी कुञ्चित वस्त्रों से मण्डित हुआ है। रथयात्रा के समय महोत्सव के कारण दिन-रात में भेद नहीं रहता। इस रथ-यात्रा में भी दिन-रात का भेद मालूम नहीं हो सका, चूँकि ऋषि और जरता आदि रति-रस में निमज्जित हुए थे। सुतरां यह नौका-यात्रा जगन्नाथ जी की रथ-यात्रा से सर्वतोरूपेण समान थी। (७३ से ७५)

वीचि—लहरें; रज्जु—रस्सियाँ; बेनिरोधे—दोनों किनारों पर; वस्त्रकुञ्चा—कुञ्चित वस्त्र; चिराळ—पताकाएँ। (७३ से ७५)

वेळारे लागिला नाव चम्पावतीपुरे,
बरषिला ऋषि झरनीर लोड़िबारे । ग्रे । ७६ ।

बहिला प्रवाह, पूर्ण केदार होइले,
बिभाण्डक-पुत्र पाशे लोमपाद मिळे । ग्रे । ७७ ।

सरलार्थ—चम्पावतीपुर के घाट पर नौका पहुँची। ऋषि के चाहते ही नीर झरने लगा। चारों ओर जल-स्रोत छूटने लगे। धान-क्यारियों में पानी भर गया। यह सब देखकर विभाण्डक-पुत्र ऋष्यशृंग के पास राजा लोमपाद आकर मिले। (७६-७७)

बेळा—किनारा; प्रवाह—स्रोत; केदार—क्यारियाँ। (७६-७७)

बिरचिले लक्ष्य गिरि संगे ऋष्यशृंग,
बिघात-वज्र-सुहास ग्रोगे दम्भ भंग । ग्रे । ७८ ।

सरलार्थ—राजा लोमपाद ने ऋष्यशृंग को देखकर पर्वत सहित उनकी तुलना की। क्योंकि पर्वत पर जैसे शृंग (चोटियाँ) हैं, वैसे इनके मस्तक पर शृंग (सींग) हैं। वज्राघात से पर्वतों का दम्भ भग्न हुआ था। वेश्याओं के मन्द-हास-वज्र से ऋषि का दम्भ भी चूर्ण हो गया है। (७८)

विषय बुझाउँ ग्रोषा महातपोबन्ते,
बाञ्छि कल्याण बसाइ राजा दण्डवते । ग्रे । ७९ ।

बिमळ चित्ते मण्डिले य़ाइ तार पुरी,
बरदाता पुत्रदाने होमारम्भ करि । य़े । ८० ।

सरलार्थ–वेश्याओं के सारी बातें समझा-बुझा कर राजा से कहते समय, राजा ने महातपोवन्त ऋष्यश्रृंग को प्रणाम किया । ऋषि ने उन्हें कल्याणपूर्वक अपने पास बैठाया । उसके बाद राजभवन में ऋषि ने प्रवेश किया और "तुम्हें पुत्र की प्राप्ति हो" यह वरदान देकर पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ किया । (७९-८०)

बाककल्याणिए शुणि दशरथे कहि,
बेश्या जरता-प्रमुख्या जाङ्गळिका होइ । य़े । ८१ ।
बिबर पर्णकुटीरे थिले मुनि-नाग,
बजाइ सप्तकी नागेश्वर बाद्य बेग । य़े । ८२ ।
बिभेदित-कृतचित्त रसगीत गाइ,
बिधुचूर्ण मन्त्र-धूळि पकाइ पकाइ । य़े । ८३ ।
बाहारकु आणि नाव-पेड़ारे मुदिला,
बिळासवश करिण पुणि खेळाइला । य़े । ८४ ।
बारबामा बार भोगिनीरे सेहि य़ोगी,
बिगरित एणिकि से बोलाइबे भोगी । य़े । ८५ ।

सरलार्थ–एक ब्राह्मण यह बात सुन आकर दशरथ से बोले, "वेश्या-श्रेष्ठा जरता ने विषवैद्या (अर्थात् सँपेरिन) के रूप में पर्णकुटीर-रूपी गर्त्त-स्थित मुनिरूपी नाग के चित्त को वीणारूपी नागेश्वर बाजा बजा के आदिरसपूर्ण संगीतरूपी पद्मतोला गान से द्रवीभूत किया, और बार-बार उनके शरीर पर कर्पूर-चूर्णरूपी मन्त्ररज डालकर उन्हें बाहर ले आयी, नौकारूपी पिटारी में बन्द कर रखा तथा नानाविध रस-क्रीड़ाओं से उन्हें वशीभूत कर खेलाया । वही 'योगी' मुनि-नाग सहवास-योग्या बारह वेश्याओं के द्वारा बिगरित (अर्थात् विषशून्य अथवा क्रोध-शून्य) हुए । अब वे भोगी (अर्थात् भोगशाली अथवा रसिक) कहलाएंगे।" (८१ से ८५)

बाक-कल्याणि—ब्राह्मण; प्रमुख्या—श्रेष्ठा; जाङ्गळिका—विषवैद्या, सँपेरिन; विवर—गर्त्त; सप्तकी—वीणा; नागेश्वर—साँप खेलाने का बाजा (बीन, तुम्बी); विभेदित-कृत-चित्त—हृदय को पिघलाकर; रसगीत—आदिरसपूर्ण संगीत, पद्मतोला—(साँप को वशीभूत करने के लिए सँपेरा जो गान गाता है, मउहर) विधुचूर्ण—कर्पूर-चूर्ण; बारवामा—वेश्या; भोगिनी—साँपिन, सहवास योग्या; बिगरित—विषशून्य, क्रोधशून्य; भोगी—भोगशाली, साँप (रूपक तथा श्लेषालंकार) । (८१ से ८५)

बहि नागरे ईश्वरपरि चम्पापुरे,
बसन्ति कृपाळु होइ कुमार दानरे । ये । ८६ ।

सरलार्थ–आगे ब्राह्मण ने कहा, "रसिक और शिवजी जिस तरह चंपा फ़ूल का आदर करते हैं, उसी प्रकार ऋषि चम्पावतीपुर का आदर कर, वहाँ वास करते हैं। उन्होंने उस पुरी के राजा (लोमपाद) को पुत्रदान देने के लिए दया दिखायी है, मानो शंकरजी ने कार्त्तिकेय पर दया प्रकाश की हो । (८६)

नागरे—रसिक लोग; ईश्वर—शिवजी; चम्पापुरे—चम्पा फूल में, चम्पावतीपुर में; कुमार—कार्त्तिकेय, पुत्र (श्लेष) । (८६)

बार्त्ता शुणि तोष त्वरा होइ सूर्य्यवंशी,
बळ सज करि चम्पापुरे मिळे आसि । ये । ८७ ।

सरलार्थ–यह समाचार सुनकर सूर्यवंशीय राजा दशरथ सन्तुष्ट हुए और शीघ्र ससैन्य चम्पावतीपुर में प्रविष्ट हुए । (८७)

बाटुँ लोमपाद नेइ ऋषिङ्कि भेटाइ,
बिकशितहास करि कल्याणे बसाइ । ये । ८८ ।

सरलार्थ–लोमपाद ने दशरथ को मार्ग से स्वागतपूर्वक ग्रहण किया और ऋषि से मिला दिया । ऋषि ने मन्दहास-प्रकाश-पूर्वक राजा को आशीर्वाद किया और पास बैठाया । (८८)

बिप्रोत्तम पुच्छे तब सर्वमंगळ कि ?
बोले विकल्पे पुच्छिल सर्वज्ञतरकि । ये । ८९ ।

सरलार्थ–ब्राह्मणश्रेष्ठ ऋष्यश्रृंग ने दशरथ से पूछा, "क्या आपका सब कुशल है तो ?" यह प्रश्न सुनकर दशरथ ने तर्क करके कहा, "आप तो सर्वज्ञश्रेष्ठ हैं; ऐसा क्यों पूछ रहे हैं ? (८९)

विप्रोत्तम—ब्राह्मणश्रेष्ठ (ऋष्यश्रृंग); विकल्पे—तर्क करके; सर्वज्ञतर—सर्वज्ञश्रेष्ठ । (८९)

व्यथा जनमुँ विनति होइण तदर्थी,
बररूपाजीवा अछि कहिदेला एथि । ये । ९० ।

बराङ्गना सुन्दरीरतन तव सुता,
बिबाह कर यतीन्द्रे हेबे सुतदाता । ये । ९१ ।

बीरवर उपइन्द्र भञ्ज कहे रस,
बयाणोइ पदरे ए छान्द हेला शेष । ये । ९२ ।

सरलार्थ–'पुत्रकामी होकर राजा दशरथ आये हैं'—यह जानकर ऋषि को बड़ा दुःख हुआ । इस समय वेश्या-श्रेष्ठा जरता ने दशरथ से कहा, "आप अपनी सुन्दरी-शिरोमणि नारी-श्रेष्ठा कन्या शान्ता को इन्हीं मुनि-श्रेष्ठ के विवाह-सूत्र में अर्पण कीजिए । वे आपको पुत्रलाभ के लिए वरदान करेंगे । वीरवर उपेन्द्रभञ्ज ने बयानबे पदों में इस रसपूर्ण छान्द को समाप्त किया । (९० से ९२)

तदर्थी—पुत्रकामी; वररूपाजीवा—वेश्या-श्रेष्ठा; वराङ्गना—नारीश्रेष्ठा; यतीन्द्र-मुनिश्रेष्ठ; सुतदाता—पुत्रदाता । (९०-९२)

॥ इति चतुर्थ छान्द ॥

पञ्चम छान्द

राग—मङ्गळगुज्जरी

विभाकरवंशी शुणि पुलक वहि ।
विभा कर लग्न बुझि वशिष्ठे कहि । १ ।

सरलार्थ—सूर्यवंशीय राजा दशरथ ने जरता की यह बात सुनकर वशिष्ठ से कहा, "शुभ लग्न निर्णय करके विवाह कराओ" । (१)

विन्यास कले से बाणी सन्ध्यावसाने ।
बसाइवा मण्डपरे कन्या सुमने । २ ।

सरलार्थ—यह सुन वशिष्ठ ने कहा, "सन्ध्या के बाद स्थिर मन से विचार करके कन्या शान्ता को विवाह-मण्डप में बैठाएँगे" । (२)

बिजन स्थानरे बसि वेनि नृपति ।
बिविध सम्भार करि नग्र मण्डान्ति । ३ ।

बासङ्गरस नबानुभवी भ्रमर ।
बारिजबास लभि कि नोहे आतुर ? ४ ।

बारस्त्रीकि पुच्छि एकान्तरे ता कान्त ।
बर्द्धन अर्थे क्रमे से शोभा कथित । ५ ।

सरलार्थ—राजा दशरथ और लोमपाद, दोनों ने एकान्त में बैठकर बड़ी सज-धजं से नगर का मण्डन करवाया । जिस भ्रमर ने पहली बार बासक फूल का रस आस्वादन किया है, वह कमल की सुगन्ध पा कर उसके रसास्वादन के लिए क्या आतुर नहीं होता है ? वेश्यारत ऋषि राजकन्या की रति की आशा से उसी तरह आतुर हो उठे और जरता से राजकन्या की कान्ति अर्थात् सुन्दरता के बारे में पूछा । जरता ऋषि का स्नेह बढ़ाने के लिए शान्ता के सौन्दर्य का बढ़-चढ़ाकर वर्णन करने लगी । (३-४-५)

बासंगरस—बासक फूल का रस; बारिज-बास—कमल की सुगन्ध; (ऋषि की भ्रमर से, वेश्या की बासक फूल से तथा शान्ता की कमल से तुलना है); बारस्त्री—वेश्या;

पुच्छि—पूछा; एकान्तरे—एकान्त में; ता कान्त—उसकी अर्थात् राजकन्या की कान्ति ("कान्त" में यमक अलंकार)। (३-४-५)

बिलक्ष्य पाश पाटळी सारस पाळि।
बाहु श्रवण उदर गण्डरे दळि। ६।

सरलार्थ—"पाश, पाटली फूल, कमल तथा तलवार की मूठ से क्रमश: स्वभावसुन्दर बाहुओं, कानों, उदर तथ कपोल की तुलना साधारणतया की जाती है। परन्तु शान्ता के उक्त अवयवों की यदि उपर्युक्त वस्तुओं से तुलना की जाय, तो ऊपर-लिखित वस्तुओं की शोभा नीचे लिखी वस्तुओं की शोभा से दलित हो जायगी। (६)

पाश—अस्त्रविशेष—(बाँधने वाला जाल); पाटली फूल—पाढ़र का फूल (संस्कृत-पाटल); खड्गपाळि—तलवार की मूठ; गण्ड—गाल (कनपटी) (व्यतिरेक अलंकार)। (६)

बक्षोज नितम्ब चक्रे पकाइ डका।
विभ्रम भ्रमरे लक्ष्य नाभि अळका। ७।

सरलार्थ—उसके स्तनों से चक्रवाक पक्षी तथा नितम्ब से रथ के चक्के सुन्दरता में समान न हो सकने के कारण गमन के समय ध्वनि के मिस (कें कें करके) करुण पुकार कर रहे हैं। उसकी नाभि से जल के भँवर तथा घुंघराले बालों से भौंरों की तुलना करना एक भ्रम ही मात्र है। (७)

वक्षोज—स्तन; नितम्ब—कमर के पीछे का भाग; चक्रे—चक्रवाक, रथ चक्र (श्लेष); विभ्रम—जल के भँवर; भ्रमरे—भौंरे, भ्रान्ति (श्लेष); (व्यतिरेक अलंकार)। (७)

विस्तीर्ण्णरे शोभा रम्भा प्रभाकु गञ्जि।
वृशाळ ऊरुयुगळ चरम राजि। ८।

सरलार्थ—उसकी दोनों बड़ी जांघों के प्रान्त भाग विशेष रूप से केले के वृक्ष की शोभा की निन्दा कर रहे हैं। (८)

विस्तीर्णरे—विशेष रूप से; रम्भा—केले का वृक्ष; प्रभा—कान्ति, गञ्जि—धिक्कारना, निन्दा करना; वृशाळ—उन्नत, बड़े; ऊरुयुगळ—दोनों जांघें; चरमराजि—प्रान्त भाग समूह। (८)

बिघटित हरि ओष्ठे प्रातोदयरे।
विशीर्ण्ण कटि नासिका मधुर गिरे। ९।

सरलार्थ—उसके होंठों से उदयकालीन सूर्य की, क्षीण कटि से सिंह की कटि की, नाक से तोते की चोंच की, और मधुर वाणी से कोयल की बोली की तुलना नहीं हो सकती। (९)

हरि—सूर्य, सिंह, शुक (तोता), कोयल (श्लेष); **विशीर्ण—क्षीण** (व्यतिरेक अलंकार)। (९)

विलक्षित चन्द्रहासे तनु शीतळे।
वर्ण्ण सुलपन रोमावळीर तुले। १०।

सरलार्थ—उसकी हँसी से चाँदनी की, शरीर की शीतलता से कर्पूर, जल या चन्दन की, वर्ण से सुवर्ण की, मुख से चन्द्र की, और रोमावली से एला-लता (इलायची की लता) की शोभा की तुलना नहीं हो सकती। (१०)

चन्द्र—चन्द्रिका, कर्पूर, जल, चन्दन, सुवर्ण, चन्द्र व इलायची, (श्लेष); सुलपन—सुन्दर वदन; (व्यतिरेक अलंकार)। (१०)

बाळभ्रूलता लोचन गमन गळा,
वपु सुगन्धे सारंगे नोहिवे तुळा। ११।

सरलार्थ—उसके केशगुच्छ से मेघ, भौंहों से धनुष, चक्षुओं से चकोर, गति (चाल) से हंस या हाथी, कण्ठ से शंख और शरीर की सुगन्ध से कमल तुलना के योग्य नहीं है। (११)

सारङ्ग—मेघ, धनुष, चकोर, हंस या हाथी, शंख तथा कमल, (श्लेष)। (११)

बिधाता शोभा विधाने शान्त से शान्ता।
बोलि मउन होइला बार-वनिता। १२।

सरलार्थ—"इसकी शोभा का निर्माण समाप्त करके विधाता शान्त हुए; अर्थात् विधाता की सुन्दरी-निर्माण-इच्छा ने यहीं से शान्ति प्राप्ति की; इसीलिए इसका नाम शाप्ता पड़ा है।"—इतना कहकर वेश्या जरता चुप हो गई। (१२)

मउन—चुप; बारबनिता—वेश्या। (१२)

बिधुन्तुद प्राय होइ सन्ध्या आसिला।
बिवस्वान-ग्रासी रङ्गभाव दिशिला। १३।

सरलार्थ—इसके अनन्तर सन्ध्याकाल ने राहु की तरह उमड़ कर सूर्य को ढक लिया। पश्चिम आकाश लाल रंग का दिखाई दिया। (१३)

विधुन्तुदप्राय—राहु की तरह; विवस्वानग्रासी—सूर्य का ग्रासकारी। (१३)

बाळी से काळी पिधानि कि पाटशाढ़ी।
बहिले कि सरस्वती काळिन्दी जडि। १४।

सरलार्थ—एकाएक अन्धकार के उमड़ आने से ऐसा प्रतीत हुआ मानो कृष्णवर्णा सन्ध्या-रमणी ने लाल साड़ी पहनी हो, अथवा सरस्वती नदी कालिन्दी (यमुना) नदी से मिलकर प्रवाहित हो रही हो ! (सरस्वती का जल लाल और यमुना का जल काला है। इसलिए कवि की यह उत्प्रेक्षा यथार्थ है।) (१४)

बाळी से काळी—वह कृष्णवर्णा सन्ध्या-रमणी; पिधानि—पहनकर। (१४)

बनजारिकर किछि आसिला दिशि।
बारुणी त्रिबेणी घाटे पड़िला घोषि। १५।

सरलार्थ—इस समय चन्द्र के उदित होने पर उनकी उदयकालीन शुक्ल किरण सन्ध्याकालीन लाल तथा कृष्ण वर्णों से मिल गयी। तो शुक्ल, कृष्ण तथा रक्त—तीन रंगों का समावेश हो गया। उसे देखकर ऐसा मालूम हुआ मानो गंगा, जमुना और सरस्वती के संगम-स्थल में वारुणी स्नान का योग पड़ा है ! (१५)

बनजारि—पद्म का अरि (शत्रु) अर्थात् चन्द्र। (१५)

बिस्तृत पक्षे दिबान्ध प्रमुख द्विजे।
बिकाशि श्लोक वाणोकि बिहारे मज्जे। १६।

सरलार्थ—जैसे ब्राह्मण लोग त्रिवेणी घाट पर गंगा जी का स्तोत्र-पाठ करते हुए जल में गोता लगाने लगते हैं, उसी तरह दिन में अन्धे हुए उल्लू आदि निशाचर पक्षी [अब रात्रि आने पर] अपने-अपने पंख फैलाये चारों ओर घूमकर क्रीड़ामग्न (खेल में डूबे हुए) हैं। (१६)

द्विजे—पक्षी; दूसरे पक्ष में ब्राह्मण, (श्लेष) (१६)

बिजिघोष आदि बाद्य बाजे एकाळे।
बरकन्या ऋष्यशृंग शान्ताकु कले। १७।
बारि तोळि देले शङ्खे शङ्खे रतन।
बत्सासह धेनु कउशेय वसन। १८।

सरलार्थ—इसी समय बिजिघोष (ढाँक) आदि बाजे बजने लगे। ऋष्यशृंग व शान्ता को क्रमशः वर तथा वधू के वेश में सुसज्जित करके विवाह-मण्डप में बैठाया गया। हस्तग्रन्थि पड़ने के बाद दशरथ ने शंख में जल लेकर दामाद को एक शंख संख्यक रत्न, सवत्सा (बछड़े के सहित) धेनु तथा पट्टवस्त्र आदि दहेज में दिये। (१७-१८)

बिजिघोष—ढाँक की तरह एक बाजा; कौशेय वसन—पट्ट वस्त्र; 'शंखे' में यमक अलंकार। (१७-१८)

बनजासन सावित्री प्राय दिशिले ।
बिनोदे शर्वरीरे एकान्ते रसिले । १९ ।

सरलार्थ—श्रृंगीऋषि व शान्ता क्रमशः ब्रह्मा तथा सावित्री की तरह दिखाई दिये। इसके बाद रात में दोनों एकान्त में श्रृंगार रस में डूब गए। (१९)

बनजासन—ब्रह्मा । (१९)

बाहुळेय प्राये हेला प्रात उत्पत्ति ।
बिभ्राजि तारकासुर प्रमोद अति । २० ।

सरलार्थ—इसके अनन्तर जैसे कार्त्तिकेय ने पैदा होकर तारकासुर का वध करके देवताओं को आनन्द प्रदान किया था, वैसे ही प्रभातकाल उपस्थित होने पर, तारों को लुप्त तथा सूर्य को प्रकट करने से जगत् के प्राणियों में आनन्द फैल गया। (२०)

बाहुळेय—कार्त्तिकेय; तारका—तारकासुर, तारे, (श्लेष); सुर—देवता, (सूर-सूर्य), (श्लेष) (२०)

बिभ्राजि उज्ज्वळ शक्ति मन्तरे सेहि ।
बिहारी होइ क्रमशे षष्ठीरे स्नेही । २१ ।

सरलार्थ—कार्त्तिकेय ने अत्युज्ज्वल 'शक्ति' नामक अस्त्र धारण किये हुए देदीप्यमान हो स्वच्छन्दता से विहार किया था। वे पार्वती के प्रति अत्यन्त अनुरक्त अर्थात् मातृवत्सल हुए थे। वैसे ही प्रभात ने उज्ज्वल सूर्य की किरणों का विस्तार करते हुए समग्र संसार को धीरे-धीरे आलोकित किया और साठ घड़ी वाले दिन को भोग करने के लिए, आग्रह प्रकट किया। (२१)

शक्तिमन्तर—पराक्रमशाली, शक्तिधारी; षष्टी—दुर्गा अथवा पार्वती, साठ दण्ड वाला (दिवस), (श्लेष) (२१)

बारकरे ख्यात शिवपुरे उत्सवे ।
बादन ये शङ्खमाळि-गणहिँ भावे । २२ ।

सरलार्थ—द्वादशभुजाविशिष्ट होकर कार्त्तिकेय ने जब जन्म ग्रहण किया, तब शिव के गणों ने कैलास पर शंख बजाये थे। उसी प्रकार प्रभात रवि, सोम आदि वारों में से किसी एक नाम से ख्यात हुआ और उस समय पूजकों ने देव-मन्दिरों में शंखध्वनि की। (२२)

बारकरे—बारह हाथों से, किसी एक वार में, (श्लेष); शिवपुर—कैलास; शंखमाळी—शंखसमूह; गण—शिवगण; माळीगण—पूजक लोग। (२२)

बिगत निद्रा एकाळे दशरथर ।
बसाइ जामाता घेनिगले रथर । २३ ।

सरलार्थ—इसी समय दशरथ की निद्रा-भंग हुई और वे अपने जामाता को रथ में बैठा कर ले चले । (२३)

बप्र जिणि परबेश अय़ोध्या दुर्गे ।
ब्रत आचरइ तहिँ महिषी बर्गे । २४ ।
बीतिहोत्र स्थापि य़ज्ञकुण्डे सत्वरे ।
ब्रह्मबेत्ता होम कले पुत्र अर्थरे । २५ ।
ब्यापि तहुँ धूमावळि ऊद्धर्वे चपळे ।
बियतिरे जळधर प्राय दिशिले । २६ ।

सरलार्थ—इसके अनन्तर गढ़ के परकोटे को पार कर उन्होंने अयोध्या दुर्ग में प्रवेश किया । ब्रह्मज्ञानी ऋषि ऋष्यशृंग ने रानियों का व्रत-आचरण करा के पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए कुण्ड में अग्नि स्थापित की और होमारम्भ किया । एकाएक यज्ञ-कुण्ड से धुआँ ऊपर उठकर आकाश में फैल जाने से, वह मेघ सा दिखाई दिया । (२४-२५-२६)

बप्र—परकोटा; बीतिहोत्र—अग्नि; बियतिरे—आकाश में; जळधर—मेघ । (२४, २५, २६)

बिजुळि लक्ष्य बड़भि रंगकेतन ।
बरह टेकि अनाइ केकी नर्त्तन । २७ ।

सरलार्थ—राजप्रासाद पर उड़ती हुई लाल पताका को उसी धूम-मेघ की बिजली समझ कर मयूर गण पुच्छ उठाए आनन्द से नाचने लगे । (२७)

बड़भी—प्रासाद; रंगकेतन—लाल पताका; बरह—पुच्छ; केकी—मयूर । (२७)

बिथिरचित्त तृषार्त्ती य़ेते सारंग ।
बीथी बीथी होइ कले निकटे रंग । २८ ।

सरलार्थ—प्यासे, अधीर चातकवृन्द उसी धूम को मेघ समझ कर समूहों में आ-आकर आनन्द से क्रीड़ा करने लगे । (२८)

बिथिरचित्त—अस्थिर हृदय; सारंग—चातक, पपीहा; बीथी-बीथी होइ—दल-दल होकर । (२८)

बायुनाए दुन्दुभि दिआउ हरषे ।
बिजनित स्तनित कि प्रते मानसे । २९ ।

सरलार्थ—बाजा बजाने वाले लोगों ने इस समय सानन्द दुन्दुभियाँ बजाईं। वह ध्वनि बादलों के गर्जन के समान प्रतीत हुई। (२९)

बायुनाए—बादक लोग; स्तनित—बादलों का गर्जन (२९)

बिबेक मधुरी भेरी दात्यूह कङ्क।
बर्षाभू टमक य़हिँ उच्चनादक। ३०।

सरलार्थ—मधुरियों और भेरियों का स्वर दात्यूहों (पपीहों), तथा कंक पक्षियों के स्वर और टमकों (डुगडुगी) की उच्च ध्वनि मेंढकों के गर्जन-सी प्रतीत हुई। (३०)

कंक—सफ़ेद चील; बर्षाभू-मेंढक (३०)

बळाका प्रकार निश्चे चिराळमान।
बंशे उड़ुछन्ति होइ अति रञ्जन। ३१।

सरलार्थ—बाँस के अग्र भाग में फहरती हुई धवल पताकाएँ उड़ते हुए बगुलों की पंक्तियों की तरह प्रतीत हुईं। (३१)

बळाका प्रकार—बगुलों की श्रेणी की तरह; चिराळ—पताकाएँ। (३१)

बरषिबे कृपाजळ उदये हरि।
बह्निकुण्ड नभ अवलम्बन करि। ३२।

सरलार्थ—मेघ के उदय होने पर उनके आधार पर इन्द्र वर्षा करते हैं, वैसे ही विष्णु जी अग्निकुण्ड-रूपी मेघ के आधार पर कृपा-जल बरसायेंगे। (३२)

हरि—इन्द्र, विष्णु (श्लेष)। (३२)

बशिष्ठादि ऋष्यशृंग सेठारे थिले।
बिहीन निमिष य़े सेमाने नमिले। ३३।

सरलार्थ—होमकुण्ड के निकट वशिष्ठ, ऋष्यश्रृंग आदि ऋषि बैठे हुए थे। उन्होंने उसी होमकुण्ड में आविर्भूत विष्णु जी को अपलक नेत्रों से देखा और नमस्कार किया। (३३)

बरुणाळय करुणाकर बोइले।
बिराज कम्बु चक्र गदाब्जे मञ्जुळे। ३४।

सरलार्थ—ऋषियों ने कहा, "हे करुणा-वरुणालय! समुद्र जिस प्रकार शंखों, चक्रवाक पक्षिसमूह, भवँरों और चन्द्रमा को धारण किये शोभित होता है, उसी प्रकार आप पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी

गदा एवं पद्म के योग से मनोहर होकर विराजमान हैं। आप हम लोगों के प्रति दया प्रकट कीजिए। (३४)

वरुणाळय—समुद्र; कम्बु—शंख; चक्र—चक्रवाक पक्षी, जल का भँवर या अस्त्रविशेष; गदा—समूह, अस्त्रविशेष; अब्ज—चन्द्र, पद्म (श्लेष)। (३४)

बिधृत कर मकर लक्षणमान।
बुड़न्ति महतीय़ोगे नयन-मीन। ३५।

सरलार्थ—समुद्र ने जिस प्रकार मीन, मकरादि जलचर जीवों को अपने शरीर में धारण किया है, आपने उसी तरह अपने शरीर में मीन, मकरादि चिन्ह-समूह धारण किये हैं। लोग महती नामक योग में समुद्र में निमग्न होते हैं। उसी तरह आपके दर्शनाभिलाषी बड़े-बड़े भक्तवृन्द के नयन-मीन आपके हृदय-सागर में निमज्जित हो रहे हैं। अर्थात् भक्त-जन आपको निर्निमेष (अपलक) नयनों से ताक रहे हैं। (३५)

महती—बड़े, महती नामक योग (श्लेष)। (३५)

बोइतिआळ य़े दशरथ नृपति।
बञ्छिबारे कर तारे रत्न प्रापति। ३६।

सरलार्थ—हे प्रभो! जिस प्रकार समुद्र नाविकों की मनोवाञ्छा पूर्ण करके उन्हें रत्नदान करता है, हे दयासागर! उसी प्रकार आप दशरथ रूपी नाविक को पुत्र-रत्न प्राप्त कराइये। (३६)

बोइतिआळ—नाविक। (३६)

बड़बानळे पकाअ राक्षसगण।
ब्यत्रके एथिरु नाहिँ आन मागिण। ३७।

सरलार्थ—समुद्र राक्षसों को वाडवाग्नि में निक्षेप करता है। उसी प्रकार आप वाड़वानल तुल्य अपने क्रोधाग्नि में राक्षसों को निक्षेप कीजिए अर्थात् विनाश कीजिए। इसके अतिरिक्त हमारी दूसरी याचना नहीं है। (३७)

पकाअ—डालो, निक्षेप करो; व्यत्रके एथिरु—इसके अतिरिक्त; आन—दूसरी, मार्गण—मांग, भिक्षा, याचना। (३७)

ब्याकोष कुसुम-हास मुखे धइले।
बोलि अस्तु चारि चरुरूपे दिशिले। ३८।

सरलार्थ—यह सुनकर भगवान ने प्रस्फुटित पुष्प के सदृश मनोरम हास्य प्रकाश करते हुए कहा, "तथास्तु", और वह चार चरुओं के रूप में दिखाई दिये। (३८)

ब्यांकोष कुसुम—फूले हुए पुष्प। (३८)

ब्यञ्जळि करन्ते कर से ऋष्यशृंग।
ब्रह्मरूपी परवेश होइले बेग। ३९।

सरलार्थ—यह देख ऋष्यश्रृंग ने अपने हाथ की अञ्जलि प्रस्तुत की और ब्रह्मरूपी भगवान् उनके हाथ में (चरुओं के रूप में) उपस्थित हुए। (३९)

ब्राह्मणश्रेष्ठ ता राजा हस्तरे देले।
बाण्टि सर्ब महिषीरे दिअ बोइले। ४०।

सरलार्थ—ब्राह्मणश्रेष्ठ ऋष्यश्रृंग ने वह यज्ञान्न राजा दशरथ को देते हुए कहा, "यह रानियों में बाँट दें"। (४०)

बात मळयाद्रिरु ये बहइ घेन।
बंशकर्मे नाहिँ यथा हेबा चन्दन। ४१।

ब्रती नोहि सातशत सतचाळिशि।
बामा अछन्ति कौशल्या कैकेयी भाषि। ४२।

बिरक्ते नृपति दुइभाग ता कले।
बिह्वळे से दुहिङ्कर पाणिरे देले। ४३।

सरलार्थ—कौशल्या और कैकेयी ने राजा से कहा, "आपके और भी सात सौ सैंतालिस रानियाँ हैं। उन सभी ने तो व्रतों का पालन नहीं किया है। मलयाचल से मलय पवन के प्रवाहित होने पर भी बाँस के वृक्ष के भाग्य में चन्दनत्व-प्राप्ति नहीं है। वैसे ही व्रत न करने के कारण इन सभी रानियों को यज्ञान्न प्राप्त नहीं हो सकता। यह सुनकर दशरथ जी को उनसे विरक्ति हुई। उन्होंने विह्वल होकर चरु के दो भाग करके उन दो रानियों को दिये"। (४१-४२-४३)

विमळहृदया भाषि कल अहेजा।
बेनि बेनि भाग देले सन्तोष राजा। ४४।

सरलार्थ—निर्मलहृदया दोनों रानियों ने कहा, "आपने अविचार किया। आपकी सात सौ पचास रानियों में से केवल हम तीन रानियों ने व्रत का पालन किया है। परन्तु आपने हम दोनों ही को चरुदान किया है। एक (सुमित्रा) को छोड़ दिया है। यह कहकर उन दो रानियों ने अपने-अपने चरु का एक-एक भाग—ऐसे दो भाग सुमित्रा को दिये। यह देखकर राजा दशरथ को सन्तोष हुआ। (४४)

अहेजा—अविचार; बेनि—दो। (४४)

विश्वगर्भ से अशने गर्भरे रहि ।
बरषे ये स्वातीजळ भक्षण बिहि । ४५ ।
बहइ उदरे मोति शुक्ति येमन्त ।
बिघ्न नोहि ए कथाहिँ हेला तेमन्त । ४६ ।

सरलार्थ—स्वाती नक्षत्र में मेघ की वृष्टि होने पर यदि वह वृष्टि-जल सीप के पेट में पड़े, तो वह मोती बन जाता है। उसी प्रकार चरु-भक्षण करके ब्रह्माण्ड को गर्भ में धारण करने वाले विष्णु जी को रानियों ने गर्भ में धारण किया। (४५-४६)

विश्वगर्भ—संसार को गर्भ में धारण करने वाले विष्णु जी; येमन्त—जिस प्रकार; तेमन्त—उसी प्रकार। (४५-४६)

बैभाण्डक कान्ता घेनि स्वबने गत ।
बासरकु बासर राणीए अशक्त । ४७ ।

सरलार्थ—इसके अनन्तर ऋष्यशृंग अपनी प्रियतमा शान्ता को लेकर अपने तपोवन को चले गये। इधर रानियाँ गर्भ-भार से दिनों-दिन अत्यन्त दुर्बल होने लगी। (४७)

वैभाण्डक—विभाण्डक ऋषिका पुत्र, ऋष्यशृंग; बासरकु बासर—दिनों-दिन; अशक्त—कमज़ोर। (४७)

विधुत लतिका मेरु एथि उत्तारु ।
बिचित्र नोहिलो अशकत हेवारु । ४८ ।

सरलार्थ—लतातुल्या सुकुमारी रानियों ने मेरुपर्वत के सदृश उन्नत गर्भ धारण किया। परिणामस्वरूप उनका अशक्त होना आश्चर्य नहीं, प्रत्युत स्वाभाविक है। (४८)

बर्ण्ण सुवर्ण्ण दोहद रूप्यरे किणि ।
बक्षोज दन्तसम्पुटे रक्षण मणि । ४९ ।

सरलार्थ—गर्भ के लक्षण प्रकाशित होने से गर्भवती रानियों के शरीरों की कान्ति ने पाण्डु वर्ण धारण किया। स्तनों ने अधिक शोभा धारण की। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो गर्भावस्था ने रानियों के सुवर्णतुल्य शरीरों की कान्ति को चाँदी के मूल्य से खरीद कर स्तन-रूपी हस्तीदन्तनिर्मित संपुटक (पिटारी) में रखा हो। (४९)

दोहद—गर्भावस्था; बक्षोज—स्तन; दन्तसंपुट—हस्तीदन्तनिर्मित संपुटक (उत्प्रेक्षालंकार)। (४९)

बृद्धि हेबा कटि पृथु अधिक नोहि ।
बिधिपूर्वे सिंह लक्ष्य ग्रासिछि ये़हि । ५० ।

सरलार्थ—गर्भावस्था के कारण उनके कटिप्रदेश अधिक उन्नत हुए। यह स्वाभाविक ही है । इसके पूर्व इन्हीं कटियों ने पतलेपन में सिंह की कमर को ग्रास किया था, अर्थात् जीता था । रानियों की क्षीण कटियाँ अब भारी हो गयीं । (५०)

बिकीर्ण्ण मधुरसरे उदरपथ ।
बमन हेबा चित्र कि आन पदार्थ । ५१ ।

सरलार्थ—जिसका उदर मधुर रस से पूर्ण रहता है, उसके लिए यह कोई आश्चर्य नहीं कि कोई दूसरी चीज़ खाने से उसका वमन हो जाय। यहाँ रानियों के उदरों के, नारायण के मधुर रस से पूर्ण होने के कारण, दूसरे पदार्थ भक्षण करने से, उनकी उलटी हो गई । तात्पर्य यह है कि गर्भोदय की प्रथमावस्था में अरुचि के कारण स्त्रियों को उलटी होती है । (५१)

विकीर्ण—पूर्ण; चित्र कि—विचित्र है क्या ? (अर्थात् नहीं); आन पदार्थ—दूसरे पदार्थ । (५१)

बसन्त मधुमासरे नवमी ख्याति ।
बिपतिध्वज बहिले चतुर्द्धामूर्त्ति । ५२ ।

सरलार्थ—वसन्त ऋतु के चैत्र महीने में शुक्लपक्ष की नवमी तिथि प्रसिद्ध है। उस तिथि में विष्णु भगवान् ने चार प्रकार की मूर्त्तियाँ धारण कीं । (५२)

मधुमास—चैत का महीना; विपतिध्वज—गरुड़ध्वज, विष्णु; बहिले—वहन या धारण कीं; चतुर्द्धामूर्ति—चार प्रकार की मूर्त्तियाँ । (५२)

ब्युत्पत्ति ए कौशल्या कैकेयी सुमित्रा ।
बासबदिगद्रि - तिनिश्रृंग - शोभिता । ५३ ।

सरलार्थ—इस समय कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा—तीन रानियाँ उदयाचल पर सुशोभित तीन श्रृंगों की तरह दिखाई दीं । (५३)

वासवदिगद्रि—इन्द्र की दिशा अर्थात् पूर्व दिशा का पर्वत, उदयाचल । (५३)

बिधु गुरु भार्गव अङ्गिरा उदित ।
बिनश्यति धात्री-रात्रि निबिड़ ध्वान्त । ५४ ।

सरलार्थ--चन्द्र, वृहस्पति, शुक्र और अंगिरस उदित होकर रात्रि के घने अन्धकार का नाश करते हैं । उसी तरह रानियों के उदरों से चार

पुत्रों ने जन्म लेकर पृथिवी-रात्रि के घने अन्धकार अर्थात् पृथिवी के प्राणियों के चिन्तारूपी अन्धकार का नाश कर दिया। (५४)

विधु—चन्द्र; गुरु—वृहस्पति; भार्गव—शुक्र; अंगिरा—ब्रह्मा के एक मानस पुत्र; धात्री-रात्रि—पृथिवी-रात्रि; ध्वान्त—अन्धकार, चिन्ता-तामस। (५४)

बधाइ लभिले नृपे नारीए कहि।
बार्त्ताबहे राज्यान्तरे गमिले तहिँ। ५५।

सरलार्थ—अन्तःपुर की स्त्रियों ने राजा से यह शुभ संवाद कहकर पुरस्कार प्राप्त किया और दूत लोग यह सुसंवाद लेकर अन्यान्य राज्यों को गये। (५५)

बधाई—अभिनन्दन, (यहाँ पुरस्कार); गमिले—गये। (५५)

बारता कहि सामन्त पात्रे त्वरित।
बेत्रके कटक कुण्डळरे मण्डित। ५६।

सरलार्थ—द्वारपालों ने शीघ्रता से सामन्तों तथा मंत्रियों को यह सुसंवाद जताकर सोने के कंगन तथा कुण्डल आदि आभूषण प्राप्त करके पहने। (५६)

वेत्रके—द्वारपालों ने; कटक—सोने के कंगन। (५६)

बाट हाट जूर तूर बाजे असंख्य।
बिदूषक कात्यायनी हृष्ट अलेख। ५७।

सरलार्थ—इस उत्सव में हाट-बाट लूटे गये। अनगिनत तुरहियाँ बजीं। भाटों तथा प्रौढ़ा विधवाओं का आनन्द अवर्णनीय था। घर-घर यह सुभ संवाद पहुँचाकर उन्होंने पुरस्कार प्राप्त किये। (५७)

विदूषक—मनोरञ्जन करानेवाले, भाट; कात्यायनी—प्रौढ़ा विधवा स्त्रियाँ। (५७)

बृन्दबृन्द होइ तहिँ जननीमाने।
बसुधापति देखिले सूनु सुमने। ५८।

सरलार्थ—समूहों में, दूसरी माताएँ (विमाताएँ) सूतिका-गृह में इकट्ठी हुईं। उस समय राजा ने पुत्रों को सहर्ष देखा। (५८)

सूनु—पुत्र। (५८)

बनजनाभ पदकु सार्थ करइ।
बिलम्बित नाड़ नाभिमडळे शोहि। ५९।

सरलार्थ—पुत्र के नाभि-पद्म से विलंबित नाल को देखकर दशरथ जी ने विष्णु जी के 'पद्मनाभ' नामको सार्थक समझा। अर्थात् रामचन्द्रजी की नाड़ीयुक्त नाभि मृणालयुक्त पद्म की तरह शोभा पाती थी। (५९)

बनजनाभ—पद्मनाभ, विष्णु। (५९)

बिच्छेदन कले नाभि उदय हृदे।
बिग्रह सुबास ग्रेणु कस्तूरी बन्दे। ६०।

सरलार्थ—इसके अनन्तर दासियों ने पुत्रों की नाभियों का छेदन किया। तब उनके शरीरों से कस्तूरी की-सी सुगन्ध सुरभित हुई। ऐसा मालूम हुआ मानो उनका अंग-सौरभ कस्तूरी का वन्दनीय (कस्तूरी से श्रेष्ठ) होने के कारण दासियों ने उससे श्रेष्ठतर मृगनाभि के भ्रम से उनका छेदन कर दिया! (६०)

विग्रहसुवास—शरीर के अंगों का सौरभ। (६०)

ब्यकत सूतिकागृह कारुण्यपय।
बिस्तीर्ण्ण अनन्त शोभा शय़्या निश्चय। ६१।

सरलर्थ—सूतिकागृह क्षीरसागर की तरह तथा उसमें बिछाई हुई शय्या विष्णु जी की अनन्तशय्या के समान दीखती थी। (६१)

कारुण्यपय—क्षीरसमुद्र; अनन्त—शेषदेव। (६१)

बीचि चन्द्रातप कुञ्चाबास रचइ।
बिबेकी शुआइ सदा निद्रा चितोइ। ६२।

सरलार्थ—उसी सूतिकागार में बँधे चन्द्रातप में लगे कुञ्चित वस्त्र (झालर) क्षीरसमुद्र की लहरों की तरह दिखाई पड़ते थे। फिर क्षीर-समुद्र में जैसे सरस्वती विष्णु जी की निद्रा भंग करती हुई उन्हें जगाती हैं, वैसे ही सूतिकागृह में चतुर रमणियाँ पुत्रों की निद्रा भंग करती हुई, उन्हें सचेत कर रही हैं। (६२)

वीचि—लहरें; विवेकी—सरस्वती, चतुरा। (६२)

ब्रीहि आदि पञ्चबीज पञ्चुआती ग्रे।
ब्यान सह पञ्चबायु तोषक से ग्रे। ६३।

सरलार्थ—पुत्रों के जन्म के पाँचवें दिन लोगों ने उड़द आदि पंच-धान्य-मिश्रित चावल खा कर प्राण, अपानादि पाँच वायुओं को सन्तुष्ट किया। (६३)

ब्रीहि—उड़द; पंचुआती—जन्म के पंचम दिन का उत्सव; ब्यान सह पंचवायु—प्राण, अपान, समान, उदान और ब्यान—ये पंचवायु। (६३)

बनजिनी - लक्ष्य - नारी - षष्ठीघरकु ।
बराटके मण्डि कले मनोहरकु । ६४ ।

सरलार्थ—छठे दिन पद्मिनीजातीया स्त्रियों द्वारा षष्ठीगृह को कौड़ियों से मण्डित करने पर वह मनोहर दिखाई दिया । (६४)

बनजिनी—पद्मिनी-जातीया स्त्रियाँ; बराटके—कौड़ियों से । (६४)

बिय़ोग निद्रारे काम मधुरे बाद ।
बिरचि ए पाञ्च उठिआरी सम्पाद । ६५ ।

सरलार्थ—भगवान् विष्णु जी जब योगनिद्रा में अभिभूत थे, उस समय मधु दैत्य के साथ विवाद करने की इच्छा करके जग उठे थे । उसी तरह, इसी उद्देश्य से कि ये पुत्र सौन्दर्य में कामदेव और वसन्त ऋतु के साथ होड़ लगायेंगे, स्त्रियों ने सप्तम दिवस पर उनका 'उठियारी' कार्य सम्पादन किया । (६५)

काम—इच्छा, कन्दर्प; मधु—मधु नामक राक्षस, वसन्तकाल (श्लेष); उठिआरी—जन्म के सातवें दिन का उत्सव । (६५)

बिंश एकदिने दोळिशयन करि ।
बट-पत्र पुटे बाळ मुकुन्द परि । ६६ ।

सरलार्थ—इक्कीसवें दिन पुत्र झूले पर शयन करके ऐसे दिखायी दिये मानो बालमुकुन्द ने वट-पत्र पर शयन किया हो । (६६)

बढ़ान्ते य़े दशरथ चाळने कर ।
बाहुऊर्ध्वे मार्कण्डेय थिबा प्रकार । ६७ ।

सरलार्थ—उसी झूले को हिलाने के लिए जब दशरथ जी ने हाथ बढ़ाया, तो वे ऊर्ध्वबाहु मार्कण्डेय की तरह दिखाई दिये । (६७)

ब्रह्मऋषि नाम बिहि श्रीराम राम ।
बोले चन्द्र भद्र हेउ ए पछे रम्य । ६८ ।
बंशे रघु राघब ए से नाथ भणि ।
बोलाइबे रावणारि राजेन्द्र पुणि । ६९ ।

सरलार्थ—ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने ज्येष्ठ पुत्र का 'श्रीराम' अथवा 'राम' नामकरण करके कहा, "इन नामों के पीछे 'चन्द्र' व 'भद्र' शब्द युक्त होकर ये नाम रमणीय हों; अर्थात् इनके नाम 'श्रीरामचन्द्र', 'श्रीरामभद्र', 'रामचन्द्र' तथा 'रामभद्र' हों । और भी, रघुवंश में जन्म ग्रहण करने

के कारण इनके नाम 'राघव' तथा 'रघुनाथ' होंगे। बाद में रावण का वध करने से 'रावणारि' तथा राजा होकर 'राजेन्द्र' नाम धारण करेंगे"।(६८-६९)

बप्ता दशरथ राजा ग़ेणु स्वभाबे।
बहन्तु ए दाशरथि नामकु एबे। ७०।

सरलार्थ—"फिर दाशरथ के पुत्र होने के कारण ये 'दाशरथि' नाम धारण करें"। (७०)

बिहिले भरत नाम कैकेयी सुते।
बोइले सदा बञ्चिब ए शुभरते। ७१।

सरलार्थ—कैकेयी-पुत्र को देख वशिष्ठ जी ने कहा, "ये हमेशा शुभ कार्य में रत होकर जीवन यापन करेंगे, इसीलिए इनका नाम 'भरत' हो"। (७१)

बेनि सुत सुमित्रार देखि हरष।
बिचक्षण लक्षण - मानङ्के प्रकाश। ७२।

बहु लक्ष्मण नामकु अग्रज सुत।
बोलिबार कुमार एहाकु उचित। ७३।

बड़ शक्तिमन्त न गणिब आनरे।
बृद्धिहेब मेघनाद तोष दानरे। ७४।

सरलार्थ—इसके अनन्तर सुमित्रा के दोनों पुत्रों को देख कर वशिष्ठ जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा, "इन दोनों में से ज्येष्ठ में अच्छे लक्षण सब स्पष्ट हैं। इसलिए ये 'लक्ष्मण' नाम से अभिहित हों। और भी इनका नाम 'कुमार' होना चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार कुमार (कार्त्तिकेय) शक्ति-अस्त्रधारण पूर्वक अपने प्रभाव से तारकादि दूसरे वीरों की गणना नहीं करते और मेघनाद (मयूर) का सन्तोष विधान करते हैं, उसी प्रकार ये शक्ति-मान् दूसरे वीरों की गणना नहीं करेंगे और मेघनाद (इन्द्रजित्) का आनन्द छेदन करेंगे। सुतरां, इनके 'लक्ष्मण' और 'कुमार' ही नाम होने चाहिए"। (७२-७३-७४)

मेघनाद—मयूर, इन्द्रजित्; दान—देना, छेदन (श्लेष) (७२-७३-७४)

बिशिष्टे ग़ेणु शत्रुघ्न हेब सहजे।
बिदित एणु शत्रुघ्न नाम अनुजे। ७५।

सरलार्थ—लक्ष्मण के छोटे भाई अति सहज उपायों से अनेक शत्रुओं का नाश करेंगे, यह जानकर वशिष्ठ जी ने उन्हें 'शत्रुघ्न' नाम प्रदान किया। (७५)

विधान सुमित्रासुत दुहेँ सौमित्रि ।
बोलान्तु बोलि बिगत तहुँ से य़ति । ७६ ।

सरलार्थ—"ये दोनों सुमित्रा से उत्पन्न हैं। इसीलिए 'सौमित्रि' नाम धारण करें"—यह कहकर ऋषि ने वहाँ से प्रस्थान किया। (७६)

बढ़ि सुते दिनु दिनु प्रभा उदये ।
बळक्षपक्षरे कळाकर पराये । ७७ ।

सरलार्थ—वे चारों पुत्र शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह दिनों-दिन दीप्तिमान् होकर बढ़ने लगे। (७७)

बळक्षपक्ष—शुक्लपक्ष; कळाकर—चन्द्र। (७७)

बाड़ धरि उभा शोभा केबा कहिब ।
बड़ कवि य़हिँ जड़ होइ रहिब । ७८ ।

सरलार्थ—दीवारों के सहारे खड़े होने पर उन पुत्रों की शोभा कौन वर्णन कर सकेगा? बड़े-बड़े कवि (अथवा ब्रह्मा तक) भी उस छबि का वर्णन करने में अपने को असमर्थ पाकर मूक रह जायँगे। (७८)

बड़कवि—ब्रह्मा। (७८)

बिहार रचिले क्रमे क्रमे चत्वरे ।
ब्यग्रगति शिशु सङ्गे रङ्गे सत्वरे । ७९ ।

सरलार्थ—उन चारों पुत्रों ने क्रमशः दूसरे शिशुओं के सहित आँगन में नाना रंगों में शीघ्र-गतियाँ करते हुए विहार किया। (७९)

चत्वरे—आँगन में। (७९)

बाल्ये जगती-रचना नोहे बिसोर ।
बालुकारे सर्जना य़े सेहि प्रकार । ८० ।

सरलार्थ—भगवान् ने विष्णु-रूप में सृष्टि की रचना की थी, अब राम-रूप धारण करके बालक होते हुए भी, वह इसको नहीं भूले थे; इसीलिए वे अब बालू से नाना प्रकार की रचनाएँ करने लगे। (८०)

जगतीरचना—सृष्टिरचना। (८०)

ब्रतविधान समय तहिँ होइला ।
बद्रिकारे नरनारायण य़े लीळा । ८१ ।

सरलार्थ—बदरिकाश्रम में नर-नारायण की जो लीला हुई थी, रामचन्द्र जी का व्रतोपनयन-समय उपस्थित होने पर वही लीला अयोध्या में सम्पन्न हुई। (८१)

बरही स्वत सृष्टिरे शिखण्ड धरे।
बाहारिले नगर भ्रमण इच्छारे। ८२।

सरलार्थ—मयूर जिस तरह चूल धारण कर पर्वत या वृक्ष पर अपने इच्छानुसार विहार करता है, उसी तरह जगत्पूज्य रामचन्द्रजी उपनयन के उपरान्त काकपक्ष शिखा धारण करके नगर में स्वेच्छानुसार विहार करने लगे। (उपनयन के बाद क्षत्रिय लोग ऐसी शिखा धारण करते हैं।) (८२)

बरही—मयूर, श्रेष्ठ; शिखण्ड—चूल, चोटी, काकपक्ष शिखा; नगर—पर्वत या वृक्ष का, शहर (श्लेष)। (८२)

बाळकिशोर भावकु प्रकाश तहिँ।
बाहग्रीव होइथिले पूर्वरे ग्रेहि। ८३।

सरलार्थ—पहले जिन विष्णु ने हयग्रीवरूप को धारण किया था, उन्हीं विष्णु भगवान् ने रामरूप में अब बाल्य तथा कैशोर अवस्थाओं की लीलाएँ प्रगट कीं। (८३)

बाहग्रीव—हयग्रीव। (८३)

बृष-धनु-य़ुक्त रामचन्द्र सहजे।
बन्दारु से श्रुतिरूप विद्याधर य़े। ८४।

सरलार्थ—मनोहर चन्द्र जैसे सहज ही वृषराशि या धनुराशि से संयुक्त होते हैं, उसी प्रकार सर्वजनवन्दनीय राम ने, अनायास ही अति श्रेष्ठ धनुष से संपर्क-स्थापन करने के उपरान्त (अर्थात् धनुर्विद्या-प्रप्ति के बाद,) वेदाध्ययन आरम्भ किया। (८४)

वृष—वृषराशि, श्रेष्ठ; धनुयुक्त—धनुराशियुक्त, धनुर्द्धारी; रामचन्द्र—रमणीय चन्द्र, प्रभु रामचन्द्र; श्रुति—वेद; बन्दारु—वन्दनीय; विद्याधर—देवताविशेष, विद्याभ्यासी (श्लेष, उपमा-अलंकार)। (८४)

बिनयी दासी प्रकारे शारदा य़ार।
बणा केउँ विद्या आदि सुमृतिसार। ८५।

सरलार्थ—स्वयं वाग्देवी जिन रामचन्द्रजी की दासीवत् सर्वदा अनुगता हैं, वे मनु आदि स्मृति-विद्याओं में क्यों प्रवीण न होंगे? (८५)

शारदा—सरस्वती, बाग्देवी; सुमृतिसार—स्मृतिश्रेष्ठ। (८५)

बिभ्राणरु दुकूळ मनकु आणिलि।
बड़ स्नेह पीताम्बर नामे जाणिलि। ८६।

सरलार्थ—रामचन्द्र को पीत-वस्त्र धारण किये हुए देख मालूम होता है, मानों उनका 'पीताम्बर' नाम के प्रति अधिक स्नेह है; क्योंकि वे अपने किसी भी अवतार में उसका त्याग नहीं करते। (८६)

बिसोर नोहि कृपण धनर भाव ।
बप्ता-माता-मानङ्कर मानसुँ लब । ८७ ।

सरलार्थ—कंजूस जैसे धन-संचय करने को नहीं भूलता, वैसे पितामाता उन्हें एक क्षण के लिए भी अपने मन से नहीं भुलाते । (८७)

बिसोर—विसारना; कृपण—कंजूस; बप्ता-मातामानंकर—पिता-माताओं का; लव—एक क्षण के लिए भी । (८७)

बड़ किए नगर जनङ्क ए भाव ।
बखाणि होइले एका सेहि प्रस्ताब । ८८ ।

सरलार्थ—अयोध्या के लोग, 'इस जगत् में सबसे बड़े कौन हैं?' यह प्रश्न आपस में उठाकर राम के नाम का प्रस्ताव करने लगे । (अर्थात् यह निर्णय किया कि रामचन्द्र सबसे बड़े हैं ।) (८८)

बर्द्धित से बाणिज्य धनर प्रकार ।
बिदेशे होइला दिनुँ दिनुँ प्रचार । ८९ ।

सरलार्थ--व्यापार के द्वारा जैसे धन का देश-विदेशों में प्रचार तथा वृद्धि होती है, उसी प्रकार धीरे-धीरे रामचन्द्र आदि पुत्रों का यश-गौरव देश-विदेशों में प्रचारित होने लगा । (८९)

बळीवर्द य़हिँ जनमुख होइले ।
बिक्रय स्थान स्थानके बहि से कले । ९० ।

सरलार्थ—व्यापारी बैल पर सामान लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर बेचता है । वैसे ही लोगों के मुखरूपी बैलों ने पुत्रों का यश विभिन्न स्थानों में विक्रय किया । (अर्थात् विभिन्न स्थानों में पुत्रों का यशोगान किया । (९०)

बळीवर्द्द—बैल । (९०)

बात्सल्य - रस - वर्ण्णने रामभद्रर ।
बचन मन पवित्र होइला मोर । ९१ ।
बीरवर उपइन्द्र भञ्ज मो नाम ।
बयाणोइ पदे कलि ए छान्द रम्य । ९२ ।

सरलार्थ—रामभद्र का वात्सल्यरस वर्णन करके मेरा मन तथा वचन पवित्र हुआ । मेरा नाम वीरवर उपेन्द्रभञ्ज है । बयानबे पदों में मैंने इस छान्द को समाप्त किया । (९१-९२)

॥ इति पञ्चम छान्द ॥

षष्ठ छान्द

राग—माळव रोढ़ावाणी

बुधे सावधाने एहु गीतर । बाक चातुरीकि विचार कर ।
बिशुद्ध सिद्धबने मुनिय़ाग । बिसिद्ध करणे राक्षसवर्ग । १ ।

बिदित होइ सुबाहु मारीचे । बचन शून्यरु शुभिला उच्चे ।
बिकुक्षिवंशे जात राम आण । बैवस्वत ए गणे ता मार्गण । २ ।

सरलार्थ—हे पण्डितगण ! सावधान होकर इस गीत की कवित्व-चातुरी पर विचार कीजिए । सुबाहु तथा मारीच प्रमुख राक्षस लोग पवित्र सिद्धवन में ऋषियों के यज्ञकर्म में रोड़े अटकाने लगे । उसी समय आकाश से दैवीवाणी सुन पड़ी कि सूर्यवंश में उत्पन्न रामचन्द्र को यहाँ ले आइए । इन विघ्नकारी राक्षसों के प्रति उनका शर यम के सदृश काम करेगा । अर्थात् उन्हीं के शर से वे मृत्यु को प्राप्त होंगे । (१-२)

बिसिद्ध करणे—विघ्न डालना, रोड़े अटकाना; शुभिला—सुन पड़ी; विकुक्षि-वंशे—सूर्यवंश में; आण—लाओ; बैवस्वत—यम; मार्गण—शर । (१-२)

बिश्वामित्र शुणि उठि गमिले । बेगे कोशळदेश से देखिले ।
बारस्वती छवि अय़ोध्यापुरी । ब्रह्म आकारबन्त य़ेणु धरि । ३ ।

सरलार्थ—वह वाणी सुनते ही विश्वामित्र उठ कर तीव्र गति से कोशल की ओर चल पड़े । कोशल की राजधानी अयोध्या में पहुँच कर उन्होंने देखा कि उस पुरी ने अनिर्वचनीय ब्रह्मलोक की शोभा धारण की है । परब्रह्म रामचन्द्र वहाँ शरीर धारण करके निवास करते हैं । इसी लिए अयोध्यानगरी ने बैकुण्ठतुल्य सुन्दर तथा पवित्र होकर अपूर्व शोभा धारण की है । (३)

वारस्वती—ब्रह्मलोक; य़ेणु—चूंकि (ब्रह्म ने वहाँ शरीर धारण किया है) । (३)

बरणे शोभा दिव्य कन्या परि । बर खोजुअछि समान करि ।
बहिअछि पुणि सुमनमाळा । विपञ्चिवादिनी आळीरे मेळा । ४ ।

बिरळ मुखर-डिण्डिम शुभे । बिमोहित करे जगत शुभ्रे ।
बहुमूल्य बास अंगीकारी से । बिहे नूपर मोदकु विशेषे । ५ ।

सरलार्थ—अयोध्यानगरी को देखकर विश्वामित्र ने मन में सोचा कि यह नगरी शायद दिव्यवेशधारिणी एक स्वयंवरा कन्या है। स्वयंवरा कन्या जिस तरह अपने हाथ में पुष्पमाला धारण किये वीणा-वादिनी सखियों से परिवेष्टित होकर अपने अनुरूप पति खोजती है, उस समय शुभ वाद्य-नाद या गौनहारियों का गारी-गान स्वयम्बर-सभा में सुनाई पड़ता है, शुभ्र सभामण्डप मूल्यवान् वस्त्रों (चन्द्रातप आदि) से आच्छादित होकर दर्शकों तथा निमन्त्रित राजाओं के मन प्रसन्न करता है, उसी तरह यह नगरी प्राचीरों से परिवेष्टित हो, पण्डितों को अपने वक्ष पर स्थान दिये तथा वीणा-वाद्यनिपुणा स्त्रियों से मिलकर अपने अनुरूप (योग्य) वर रामचन्द्र की खोज कर रही है; अर्थात् उनके राज्य के समय की प्रतीक्षा कर रही है। साथ ही इसका मध्य भाग अविरत मंगल-वाद्यों के नाद से मुखरित होकर संसार के लोगों को विमोहित कर रहा है। बहुमूल्य प्रासादों तथ पट्ट-वस्त्रों से परिपूर्ण अर्थात् समृद्धिशालिनी होकर यह नगरी राजा दशरथजी का आनन्द बढ़ा रही है। (४-५)

वरण—वरण करना, प्राचीर; दिव्य—अपूर्व; सुमनमाळा—फूलों की माला, पण्डित-समूह; विपंचिवादिनी—वीणा-वादिनी, वीणाजित-कण्ठी; आळीरे—सखियों से; मुखर डिण्डिम—उलूलु, गारी-गान वाद्य से मुखरित; जगति—सभामण्डप, संसार। (उपमा तथा श्लेषालंकार) (४-५)

बिष्णु पराये लक्ष्मी आलिगन। बिहार चतुर-करे रञ्जन।
बिनायकरे सदा युक्त सेहि। बहुळ भक्तभाव ख्यात यहिँ। ६।

सरलार्थ—"यह अयोध्यानगरी विष्णु है।"—ऐसी कल्पना विश्वामित्रजी ने की। क्योंकि विष्णु लक्ष्मी को आलिंगन करते हैं, चतुर्भुज धारण किये गरुड़ पर विहार करते हैं और भक्त लोग उनके पास अपने मनोभाव प्रकट करते हैं। उसी प्रकार यह नगरी ऐश्वर्यों से परिपूर्ण है। अनेक चतुर लोग यहाँ विहार कर रहे हैं। बहुत विशिष्ट वीर-पुरुषों से यह नगरी पूर्ण है और प्रचुर अन्नदान के लिए यह स्थान प्रख्यात है। (६)

लक्ष्मी—लक्ष्मीदेवी, संपत्ति; चतुर-चार, चालाक; कर—हाथ, पुरुष; विनायक—गरुड़, विशिष्ट वीर पुरुष; भक्त—भक्त जन, अन्न (भात)। (श्लेषालंकार) (६)

बास्तव्य आपण परा के अछि। बइले पदार्थ न तुटे किछि।
बणिजार हस्त स्वर्ग प्रतीति। बिश्वावसु छन्ति सबु जाणन्ति। ७।

सरलार्थ—वास्तव में अयोध्या की दुकानों के समान दूसरी दुकानें अन्यत्र दुर्लभ हैं। उन दुकानों से कितने ही पदार्थ क्यों न व्यय किये जावें, वह समाप्त नहीं होते। और भी दुकानदारों के हाथ स्वर्ग-तुल्य प्रतीत हो रहे हैं क्योंकि स्वर्ग में जिस तरह विश्वावसु आदि गन्धर्व

लोग हैं, उसी तरह इन दुकानदारों के हाथों में विश्वा (धन-द्रव्य के वजन के लिए व्यवहृत बाट) आदि हैं। (७)

आपण—दुकानें; बणिजार—वणिक, दुकानदार; बिश्वावसु—एक गन्धर्व, विश्वा आदि परिमापक चिह्न, बाट—बटखरे (तौलनेका भार) । (श्लेष) (७)

बन्धुकुमुदर कि तन्तुबाय । बिशद नीळ अम्बर उदय ।
बज्रनिकर जाह्नवी लक्षणे । बिशुद्ध पय उदय कारणे । ८ ।

सरलार्थ—अयोध्या के जुलाहों के विषय में विश्वामित्र ने सोचा कि शायद वे चन्द्र हों, क्योंकि शुक्ल पक्ष का चन्द्र विस्तीर्ण नीलाकाश में उदित होता है। उसी तरह जुलाहे सफ़ेद तथा नीले वस्त्र बुन रहे हैं। गोपालों को उन्होंने गंगा नदी समझा, क्योंकि गंगा नदी से विशुद्ध जल मिलने की तरह इनसे विशुद्ध दूध मिलता है। (८)

कुमुदर बन्धु—चन्द्र; तन्तुवाय—जुलाहे; विशद—विस्तीर्ण,शुक्ल; नीलाम्बर—नीला आकाश तथा नीले वस्त्र; ब्रज्रनिकर—गोपालसमूह; जाह्नवी—गंगा नदी; पय—दूध, जल। (रूपक, उत्प्रेक्षा तथा श्लेषालंकार) (८)

बणिक-पसरा कि कइळास । बिराजे शिबा कपर्द्दी आश्ळेष ।
बळिसद्म परा नागरे चारु । व्योमा कि चन्द्र ताराळि संगरु । ९ ।

सरलार्थ–व्यापारियों की खैंचियों को देखकर उन्होंने उनको कैलास पर्वत समझा। क्योंकि कैलास पर्वत पर शिवजी पार्वती को आलिंगन किये विराजमान रहते हैं। यहाँ पर भी वैसी कौडियाँ तथा हरितकियाँ इकट्ठी हो रही हैं। और भी, उनको पाताल समझा, क्योंकि पाताल में बहुत नाग-साँप रहते हैं। इन पसरों (खैंचियों) में बहुत सी शुण्ठियाँ अथवा सीसे हैं। फिर ये पसरे (खैंचियाँ) नभोमण्डल के समान प्रतीत होते हैं, क्योंकि आकाश चन्द्र तथा तारावलियों से मण्डित है और ये पसरे (खैचियाँ) बहुत से सुवर्ण (अथवा कर्पूर) तथा मोतियों से मण्डित हैं। (९)

शिवा—उमा, हलदी, हरीतकी (हड़); कपर्द्दी—महादेव, कौड़ी; बळिसद्म—पाताल; नागरे—साँपों से, सूखे अदरकों से, सीसों से; चन्द्र—कर्पूर, सुवर्ण; ताराळि—तारासमूह, शुद्ध मुक्तासमूह। (उत्प्रेक्षा, उपमा तथा श्लेषालंकार) (९)

बारिधिकुमारी परि माळिनी । बिस्तारि सुमना-भद्र श्रीदानी ।
बेष्टने पात्रगण सावधाने । बसे कंसारि राजन ग्रसने । १० ।

फूल, चन्दन तथा कर्पूर आदि देनेवाली अयोध्या की मालिनें देवश्रेष्ठ विष्णुजी की शोभावृद्धिकारिणी मनस्विनी लक्ष्मी, तथा वर्त्तन-लोटे आदि से परिवेष्टित ठठेरे मन्त्रिगण-परिवेष्टित राजाओं के समान शोभित होते हैं। (१०)

बारिधिकुमारी—लक्ष्मी; सुमना—मनस्विनी, मालती पुष्प; भद्र—चन्दन; सुमना-भद्र—देवश्रेष्ठ; श्रीदानी—सौन्दर्यदात्री; पात्रगण—बर्तन, लोटा आदि, मन्त्री-समूह। (उत्प्रेक्षा तथा श्लेष) (१०)

बिलोकि-बिलोकि मुनि ये गले । बारण रिपुद्वारे याइँ हेले ।
बेत्रहस्त प्रतिहारी जणाइ । बिराट श्रेष्ठंकु भेटाइ नेइ । ११ ।

सरलार्थ—इस प्रकार अयोध्या की नगरी को देखते हुए विश्वामित्र जी राजा के सिंहद्वार में प्रविष्ट हुए । दण्डधारी प्रतिहारी ने राजा को मुनि के आगमन की सूचना दी और उनसे मुनि की भेंट कराई । (११)

बारणरिपु (सिंह-) द्वार—सिंहद्वार; बिराटश्रेष्ठ—क्षत्रियश्रेष्ठ । (११)

ब्रह्मांकु इन्द्र स्तुति कलापरि । बिनयी दशरथ दण्डधारी ।
बेदान्तकारी सावित्री सेवन । बिशेष-नेत्र-सुखद बिजन । १२ ।

सरलार्थ—सहस्रलोचनधारी, सबके सुखदाता इन्द्र जिस प्रकार एकान्त-विनयी होकर वेदों के उद्भवकर्त्ता तथा सावित्री देवी से सेवित ब्रह्मा जी की स्तुति करते हैं, उसी प्रकार सर्वजनों के नयनाभिराम (सर्वजन-दर्शनीय) शासनकर्त्ता दशरथ ने एकान्त विनय से वेदान्तशास्त्रकर्त्ता, सावित्री मन्त्रोपासक विश्वामित्र की स्तुति की । (१२)

बिशेषनेत्र—बहुनेत्र (इन्द्र), सुखद—सुखदाता; बिशेषनेत्र-सुखद—नयनाभिराम (सर्वजनदर्शनीय); बिजन—एकान्त । (श्लेष) (१२)

बनवासी बरसभा लोकित । बराहमूर्त्ति कि ज्याबाळी युक्त ।
बामदेव घेनि कैळास स्थान । बेद कि सुमन्त्ररे विद्यमान । १३ ।

सरलार्थ—राजा दशरथ जी की विराट सभा को देखकर विश्वामित्र जी ने समझा यह सभा बराहमूर्त्ति, कैलास पर्वत या वेद है । क्योंकि वराहमूर्त्ति के भूदेवीयुक्त, कैलास में शिवजी तथा वेद में उत्तम मन्त्रों के होने की तरह इस सभा में जाबालि, वामदेव तथा सुमन्त्र आदि मन्त्रि-वृन्द उपस्थित हुए हैं । (१३)

बनवासी—ऋषि (विश्वामित्र); ज्याबाळि—पृथ्वीदेवी, दशरथ के मन्त्री; बामदेव—शिवजी, अन्य एक मन्त्री; सुमन्त्र—उत्तम मन्त्र, अन्यतम मन्त्री । (उत्प्रेक्षा तथा श्लेषालंकार) (१३)

बशिष्ठ पुच्छे किमर्थे आगत । ब्यकत कले गाधिराज सुत ।
बृत्त राक्षसे होइ क्रतुक्रते । बिध्वंसि सुन्द उपसुन्द सुते । १४ ।
बिहायसुँ रामबाणी श्रवण । बधि रक्षगण हेब रक्षण ।
बदान्य ए राजा धर्मे उद्वेगी । बिषे ए आसिछुँ रामकु मागि । १५ ।

सरलार्थ–बशिष्ठ जी के विश्वामित्र से उनके आगमन का कारण पूछने पर उन्होंने कहा, "सुन्द और उपसुन्द–इन दो राक्षसों के पुत्र सुबाहु तथा मारीच दूसरे राक्षसों से परिवेष्टित होकर (दूसरे राक्षसों सहित) मेरा यज्ञ ध्वंस करते थे। उसी समय आकाश से दैवी वाणी सुनाई पड़ी कि राम को ले आओ। वे इन राक्षसों का वध करके यज्ञरक्षा करेंगे। ये राजा अत्यन्त धार्मिक तथा दानशील हैं,' इसलिए राम की याचना करने के लिए हम यहाँ पर आये हैं"। (१४-१५)

ऋतु—यज्ञ; विहायसुँ—आकाश से, रक्षगण—राक्षससमूह; आसिछुँ—(हम) आये हैं। (१४-१५)

बज्री हेउछ मुनि! राजा कहि। बसुधाभृत त स्वभावे मुहिँ।
बच-दम्भोळि मारि दम्भ-शृंग। बिना अपराधे करुछ भङ्ग। १६।

सरलार्थ–यह सुनकर राजा दशरथ ने कहा, "हे मुने! मैं स्वभाव से वसुधाभृत (राजा) ही हूँ। आप इन्द्रवत् मुझे वसुधाभृत (पर्वत) समझकर मेरे किसी अपराध के बिना ही वचन रूपी वज्र मारके मेरे दम्भ (धैर्य) रूपी शिखर को चूर्ण कर रहे हैं!" (इन्द्र ने वज्र से पर्वतों का पंखछेदन किया था) (१६)

बज्री—इन्द्र; वसुधामृत—राजा, पर्वत; दम्भोळि—वज्र। (श्लेषालंकार) (१६)

बाटी-क्रीड़ाकु छाड़ि नाहिँ य़ेहि। बाण धनु य़े कांशिकारे बहि।
बेश्मे रहिवाकु एका डरइ। बाण्ट मने दैत्य नाशिब केहि। १७।

सरलार्थ–आगे चलकर राजा ने कहा, "जिसने अभी तक गोली का खेल भी नहीं छोड़ा, जो कांशिका (काँसका)-धनुष लिये घूम रहा है और जो अकेले घर पर रहने में डर रहा है, वह राक्षसों का वध कैसे करेगा? ज़रा मन में विचार तो कीजिए!" (१७)

बाटी-क्रीड़ा—गोली का खेल; कांशिका—काश, काँसा; बेश्म—घर; बाण्ट—विचार करो। (१७)

बोल मुँ सैन्य सज करि य़िबि। बाद रचि तुम्भ य़ाग रखिबि।
बुझिछि य़ोद्धापण मुनि भणि। बामा कबच कि करिबु पुणि। १८।

सरलार्थ–फिर कहा, "अगर आप कहें तो मैं ससैन्य जाकर राक्षसों के साथ युद्ध करके आपके यज्ञ की रक्षा करूँगा"। यह सुनकर ऋषिने कहा, मैं आपके योद्धापन (वीरता) को भली भाँति जानता हूँ। आप वामा-कवच हैं। अर्थात् आपकी पत्नियों ने आपकी परशुराम के भय से रक्षा की थी। (अतएव आप जाकर क्या कर सकेंगे?) (१८)

वामाकवच—स्त्री-रक्षित (दशरथ परशुराम के भय से रानियों के बीच में छिपे थे।) (१८)

बाळक न बोल रामङ्कु तुहि । बह्नि क्षुद्र भस्म आच्छन्ने थाइ ।
बढ़ाए प्रभा से पाइ इन्धन । बधिबे दैत्य शलभ ये़सन । १९ ।

सरलार्थ—"हे राजा ! आप राम को बालक मत समझें। राख में आग की चिनगारी छिपी रहती है, परन्तु लकड़ी पाने पर अपना तेज बढ़ा कर पतंगों का नाश कर देती है। वैसे ही रामचन्द्र भी राक्षसों का वध आसानी से कर सकेंगे। (१९)

बह्निक्षुद्र—चिनगारी; भस्म—राख; ईंधन—जलाने की लकड़ी; शलभ—पतंग। (१९)

बामन केड़े बळि अधोगति । बिचारि छन्ति विचार तो मति ।
बिष्णु से बोइले अजनन्दन । बोले ऋषि एक मनरे घेन । २० ।

सरलार्थ—"हे राजा ! आप विचार करें। वामन कितने छोटे थे ! फिर भी तो उन्होंने बलि को पाताल में दबाया था"। यह सुनकर दशरथ ने कहा, "वे विष्णु हैं"। ऋषि ने कहा, "उन्हें तथा इन्हें एक समझो। अर्थात् ये वही विष्णु भगवान हैं। (२०)

अजनन्दन—दशरथ; घेन—ग्रहण करो, समझो। (२०)

ब्युत्पत्ति कर ये़ उत्पत्ति होइ । बनपति शिशु गज मारइ ।
बार बरषर क्षत्रिय सुत । ब्याज न करि दे राम तुरित । २१ ।

सरलार्थ—"सिंह का बच्चा पैदा होते ही हाथी को मारता है। यह बात मन में विचार कीजिए। अतएव बारह साल के क्षत्रिय-पुत्र राम को साधारण बालक न समझें। कपट छोड़कर राम को शीघ्र दें"। (२१)

व्युत्पत्ति कर—विचार करो; उत्पत्ति होइ—पैदा होते ही; वनपति-शिशु—सिंहशावक; व्याज—कपट। (२१)

बोलुँ कउशिक राघब आसि । बेहरण-सिन्धुरे ये़ाए दिशि ।
बीचिर लीळारे महारञ्जन । व्यथित तिमिरे ग्रस्त राजन । २२ ।

सरलार्थ—विश्वामित्र के ऐसे बोलते समय समुद्र के समान विस्तीर्ण सभामण्डप में रामचन्द दिखाई दिये, मानो राघवमत्स्य समुद्र में दिखाई दिया हो। राघव के लहरों में खेलते हुए डूब जाने पर उसका खाद्य तिमि नामक मत्स्य भय से आकुल होता है। वैसे ही अनित्य संसार में कुछ ही समय के लिए लीलाकारी, अत्यन्न मनोहर रामचन्द्र जी को

सभा-मण्डप में खेलते हुए देखकर 'तिमिरग्रस्त' (अन्धकार-निपतित) मनुष्य की तरह दशरथजी का हृदय भी व्याकुल हो उठा। (२२)

कउशिक—विश्वामित्र; राघव—रामचन्द्र, राघव मत्स्य; बेहरण—सभामण्डप; बीचिर—लहरों की, अनित्य; तिमिर—तिमिमत्स्य, अन्धकार। (श्लेष) (२२)

बिबेक स्वयम्भू आत्मभूचित्ते। बिधान मुनि रामर उचिते।
बसे मान्य करि आशिष पाइ। बोल राम य़ाउ कौशिक कहि। २३।

सरलार्थ—विश्वामित्र के ब्रह्मतेज को देखकर रामचन्द्र ने उन्हें ब्रह्मा समझा और उनके प्रति यथोचित सम्मान प्रदर्शित कर उनसे आशीर्वाद पाकर बैठे। रामचन्द्र का सौन्दर्य देखकर विश्वामित्र ने उन्हें कन्दर्प (कामदेव) समझा। इसके अनन्तर, "रामचन्द्र मेरे साथ चलें", इसके लिए दशरथजी की अनुमति की याचना की। (२३)

विवेक—विचार किया, समझा; स्वयंभू—ब्रह्मा; आत्मभू—कन्दर्प। (२३)

बाचंय़मभूति नृप पाइले। बाहुळ प्राये तपस्वी जळिले।
बिरोचन ए बशिष्ठ मनकु। बोइले ए ऋषि नेउ रामकु। २४।

सरलार्थ—विश्वामित्र की बात सुनकर राजा चुप रहे जिसके कारण ऋषि विश्वामित्र क्रोध से अग्निवत् जलने लगे। राजा का ऐसा आचरण वशिष्ठजी को अच्छा नहीं लगा। इसलिए उन्होंने राजा से कहा, "विश्वामित्र राम को ले जायँ"। (२४)

वाचंय़मभूति—चुप्पी, मौन; बाहुळ—अग्नि; विरोचन—अरुचिकर। (२४)

बक्त्रबिकाररु नृपर घेनि। बाहारिले राम लक्ष्मण बेनि।
बिळम्ब न करि सरय़ू पारि। बिगम्य अरण्य मध्ये बिहरि। २५।

सरलार्थ—वशिष्ठ की बातों से राजा ने स्वीकार कर लिया। यह उनके मुख्यमंत्री से जानकर विश्वामित्र राम-लक्ष्मण दोनों को अपने साथ लेकर चल पड़े। थोड़े ही समय में उन्होंने सरयू नदी को पार करके अगम्य जंगल में प्रवेश किया। (२५)

बक्त्रबिकार—मुखभंगी; विगम्य-अगम्य। (२५)

बोलाइ तामसी य़े से बाहार। बढ़ाइ देइ सन्ध्याछळे कर।
बारुणी-कुण्डे बुड़ाइ ईनकु। बिनाश करिबा इच्छि दिनकु। २६।

सरलार्थ—इस समय रात्रि ने सन्ध्या के बहाने से अपना हस्त-प्रसारण (हाथ फैला) कर सूर्य को पश्चिमदिशा रूपी कुण्ड में डुबाकर दिन को

नाश करने की इच्छा की। अर्थात् सूर्यास्त होने से सन्ध्याकाल उपस्थित हुआ। (२६)

तामसी—रात्रि; बारुणीकुण्ड—पश्चिमदिशा-रूपी कुण्ड; ईनकु—सूर्य को। (२६)

बाळ धरि किबा नेइ आर्काषि। बायसचय ग्रिबा तथा दिशि।
बोबिदेला पक्षिनाद छळर। बदने काळि पड़िला दिगर। २७।

सरलार्थ—कौए रव (शब्द) करते हुए उड़-उड़कर अपने-अपने घोंसले को जाने लगे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानों रात्रि ने दिवस के बायस (कौआ) रूपी केशों को खींचकर उसे निकाल दिया हो, जिसके फलस्वरूप वह (दिवस) पक्षियों के कलरव के मिस रो रहा हो। अनन्तर अन्धकार चारों ओर छा गया। मानो दिवस के इस तरह निकाल दिये जाने पर दिशाओं के मुख काले पड़ गये हों। (२७)

बायसचय—काकसमूह; बोबिदेला—रो उठा। (उत्प्रेक्षा) (२७)

बिकट काळकु ग्रहुँ दर्शन। बुड़िला पद्मिनी पद्म-नयन।
बसा तेजि निशाचर प्रकट। बर्जि तर्जि कले हुँ हुँ हुँ रट। २८।

सरलार्थ—इस प्रकार के भयंकर काल को देखकर पद्मिनी ने अपने पद्म रूपी नेत्रों को मूँद लिया (अर्थात् सभी पद्म के फूल मुँद गये) और उल्लू आदि निशाचर प्राणी अपने-अपने स्थानों को छोड़कर निकल पड़े तथा हुँ-हुँ शब्द प्रकट करने लगे। (२८)

बिकट—भयंकर; पद्मिनी—पद्मलता। (२८)

बिरस तेजि बाहार भुजङ्गे। बिकृत भयंकर हेला तुङ्गे।
वेनिभ्राता मुनि सेकाळ रहि। बञ्चिले प्रभात प्रवेश होइ। २९।

सरलार्थ—इस समय साँप तथा जार पुरुष सानन्द बाहर निकले। वनस्थली विकृताकार धारण करके बड़ी भयंकर लगने लगी। विश्वामित्र के साथ राम, लक्ष्मण दोनों भाइयों ने उसी जंगल में रात बिताई। अनन्तर प्रभात हुआ। (२९)

विरस तजि—विषाद छोड़कर (आनन्दमन से); भुजंगे—साँप, जारपुरुष; तुंग—अतिशय। (२९)

बासवदिग-अभ्रमु करिणी। बिजन्य कला रक्तपिण्ड जाणि।
ब्रिम्ब सबितार दिशि आसिला। बिञ्चे कर्णे शीत बात से हेला। ३०।

सरलार्थ—क्रमशः लोहित पिण्डवत् (लाल गोले के समान)

सूर्यमण्डल दिखाई दिया अर्थात् सूर्य उदित होने लगे, ठंडी हवा चलने लगी। यह देखकर कवि उत्प्रेक्षा कर रहे हैं—मानो पूर्वदिशा की अभ्रमु नामक हस्तिनी एक रक्तपिण्ड को पैदा करके उसे मूर्तिमन्त करने के लिए प्रभातकालीन वायु के मिस (बहाने) से कर्ण-संचालन रूपी व्यजन (पंखा) कर रही हो। (हस्तिनी पहले रक्तपिण्ड को जन्म देने के बाद उसे अपने कानों से व्यजन (पंखा) करके उस पिण्ड से बच्चा निकालती है। (३०)

वासवदिग अभ्रमुकरिणी—पूर्वदिशा की अभ्रमु नामक हथनी (ऐरावत की पत्नी); सविता—सूर्य; बिम्ब—मण्डल। (उत्प्रेक्षालंकार) (३०)

बिच्छेदन करि तमकु कि से। बिलेपित चक्र रकत बशे।
बञ्चिले भये लुचि रात्रिचर। बिनाशकाळ आरम्भ आम्भर।३१।

सरलार्थ--लोहित वर्ण (लाल रंग) के सूर्य ने अन्धकार का नाश किया। मानो सूर्य रूपी सुदर्शन चक्र द्वारा राहु का छेदन करने से रविमण्डल रक्तरञ्जित दिखाई देता है। यह देखकर "हम लोगों का मृत्युकाल उपस्थित हुआ" यह सोचकर निशाचर प्राणियों तथा राक्षस लोगों ने भय से छिपकर अपनी-अपनी प्राण-रक्षा की। (३१)

तम—अन्धकार, राहु; चक्र—मण्डल, सुदर्शनचक्र; रात्रिचर—उल्लू आदि निशाचर प्राणी, राक्षस। (श्लेष तथा उत्प्रेक्षा) (३१)

बर्ण्णना सिद्धिकि आणिला सेहि। विश्वामित्र रामचन्द्रङ्कु कहि।
बाबु ए बने ताड़का निबास। बाट भांगिय़िबा बिहिब त्रास। ३२।

सरलार्थ–इस तरह कवि ने प्रभात-वर्णन समाप्त किया। अनन्तर विश्वामित्र ने रामचन्द्र से कहा, "श्रीमन्, इस वन में ताड़का राक्षसी वास करती है। वह हम लोगों को भय दिखाएगी। चलो, इस मार्ग को छोड़ दूसरे मार्ग पर चलें"। (३२)

बोले राम एक राक्षसी डरे। बाट भांगिगले बहुत वीरे।
बादी हेबा केहि मखरक्षणे। बोलिण आग होइले आपणे। ३३।

सरलार्थ–यह सुनकर रामचन्द्रजी ने कहा, "अनेक वीर इसी एक ही राक्षसी के डर के मारे रास्ता छोड़ कर चले गये। अगर हम लोग उनकी तरह रास्ता छोड़ कर चले जावें तो बहुत से राक्षसों से युद्ध करके याग-रक्षा कैसे करेंगे?"—यह कहकर आप स्वयं अग्रगामी हुए। (३३)

बाट भांगिगले—रास्ता मुड़कर चले गये; बादी—विवादी; हेबा—होंगे; केहि—कैसे; मख—याग; बोलिण—बोलकर; आपणे—आप। (३३)

विश्वामित्र मध्ये पछे लक्ष्मण । बिपिन देखन्ति अति भीषण ।
बिरोचन कर पशइ नाहिँ । बिभावरी स्थान सर्वदा सेहि । ३४ ।

सरलार्थ–विश्वामित्र बीच में तथा लक्ष्मण पीछे-पीछे चले। वह जंगल अति भयंकर दीखता था। उस जंगल में कभी सूर्य की किरणें नहीं पड़ी थीं, इसलिए वहाँ हमेशा रात ही रात वास करती थी (अर्थात् वृक्षों की निविड़ता के करण वहाँ हमेशा अन्धकार छाया रहता था। (३४)

विरोचनकर—सूर्यकिरण; विभावरी—रात्रि। (३४)

बाचक ए घेनि पेचक पन्ति । बिलोकन नोहे मेचक कान्ति ।
बिनोद स्वच्छे करन्ति गण्डक । बल्मीक बिदारु छन्ति भल्लुक ।३५।

सरलार्थ–यह जंगल सर्वदा अन्धकाराच्छन्न होने से यहाँ दिन-रात उल्लू चिल्लाते रहते हैं। घने अन्धकार के कारण ऐसे दिन में भी काली चीजें नजर नहीं आ सकतीं। गैंडे स्वच्छन्दता से वहाँ क्रीड़ा कर रहे हैं, तथा भल्लूकगण (भालू) वल्मीक (बाँबी) का विदारण कर रहे हैं। (३५)

वाचक—कथक, चिल्लानेवाले; ए घेनि—इसी वजह से; पेचकपन्ति—उल्लुओं का समूह; मेचक-कान्ति-श्यामल या काले पदार्थ; बल्मीक—दीमकों का मिट्टी से बना ढूह (बाँबी)। (३५)

बराह प्रतीति स्वनरु जाणि । बिड़ाळ आदि दीप्ताक्षरु आणि ।
बारि होए गज दशन घेनि । बढ़ान्ते पाद न दिशे अवनी । ३६ ।
बृक्ष बल्ली पत्र घञ्चरु करि । बायु ये मशक मशारि सरि ।
बिचारि राघब राक्षसी आसु । बिधान गुण टङ्कार ए वशुँ । ३७ ।

सरलार्थ–उस वन में चीत्कार से वराह, चक्षुओं के तेज से बिड़ाल आदि हिंस्र जन्तु, तथा दन्तों की विमल ज्योति से हाथी पहचाने जा रहे हैं। पैर रखने के लिए भूमि भी नहीं दिखाई पड़ती। वृक्ष-लताओं के पत्तों से वह वन ऐसा आच्छादित है कि, वायु उसके भीतर नहीं घुस सकती, जैसे मच्छर मच्छरदानी में नहीं घुस सकता। राम इस आशय से कि 'ताड़की आवे', धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर टंकार करने लगे। (३६-३७)

वराह—सुअर; स्वन—शब्द, चीत्कार; दीप्ताक्ष—उज्ज्वल चक्षु; बारि होए—पहचाना जाता है; वृक्षवल्ली—वृक्षलता; घञ्च—घनता, निविड़ता, मशारि—मसहरी, मच्छरदानी; सरि—समान। (३६-३७)

बज्र उपरे कि बज्र पड़िला । विश्रामस्थान ताड़का छाडिला ।
बिक्रमि आसिला मनरु बेगे । बड़ मेघखण्ड कि बायु य़ोगे । ३८ ।

सरलार्थ—रामचन्द्र जी के धनुष्टंकार को सुनकर "शायद बज्र पर बज्र पड़ा हो" यह समझकर, (कृष्णवर्णा विशालकाया) ताड़का मन से भी अधिक वेग से अपने विश्रामस्थल से दौड़ कर आयी; मानो एक बड़ा मेघखण्ड वायु-वेग से उड़ता चला आ रहा हो । (३८)

बिकमि आसिला—दौड़ आयी । (उत्प्रेक्षा) (३८)

बिळ परा नासा सर्प फुत्कार । बातहिँ बहुछि निःश्वास तार ।
बसुन्धराधर शृंग कि हनु । बहे कि झर झाळ तथा तनु । ३९ ।

सरलार्थ—उसकी नासिका गर्त्त (गड्ढे) के सदृश है, जिससे सर्पफुफकार के सदृश निःश्वास-वायु निकल रही है । उसके दोनों गाल पर्वत की चोटियों के समान दिखाई पड़ते थे तथा देह से झरने के समान पसीना छूट रहा था । (३९)

बिळ—गर्त्त, गड्ढे; परा—सदृश; फुत्कार—फुफकार; वात—पवन; तार—उसका; बसुन्धराधर—पर्वत; हनु—गाल; झाळ—पसीना; तनु—शरीर । (३९)

बिस्तृत मुख गह्वर सदृश । ब्याघ्र कला प्राये से मध्ये घोष ।
बिस्तारे रे रे कार शुभुअछि । बह्नियोग प्राये जिह्वा जळुछि ।४०।

सरलार्थ—उसका मुख एक बड़ी पर्वत-गुफा के समान विस्तृत हुआ है और गुफा में व्याघ्र के गर्जन के सदृश उसके मुख से दीर्घ 'रे' 'रे' की [विकट] ध्वनि सुनाई पड़ रही है । उसकी जीभ पर आग जलती हुई सी दिखाई पड़ रही है । (४०)

गह्वर—गुफा; घोष—गर्जन; विस्तारे—दीर्घ; शुभुअछि—सुनाई पड़ रही है; बह्नियोग परि—आग जलती हुई-सी । (४०)

बीभत्सरूपा आसि परवेश । बृक्ष प्रहारे बहि महारोष ।
बोइला मो दान्त लांगल-ईश । बप्र तुम्भे हेव करिबि चाष । ४१ ।

सरलार्थ—उसी विकट रूप वाली ताड़का ने राम के सम्मुख उपस्थित होकर अत्यन्त क्रोध से एक वृक्ष का प्रहार करके कहा, "मेरे दाँत [नुकीले] फाल से युक्त हल के समान हैं । उनसे मैं तुम्हारे शरीर-रूपी क्षेत्र (खेत) को जोतूँगी । अर्थात् मैं तुम्हें चबाऊँगी" । (४१)

बीभत्सरूपा—भयंकर शरीर वाली, वप्र—क्षेत्र; करिबि चाष—खेती करूंगी, जोतूंगी । (४१)

ब्यानसह प्राण कर्कट बत । बाहारि होइबे मन्द आयत्त ।
बोलि से तळ उच्चाइबा बेळे । बिधु-अर्द्धशर प्रयोग कले । ४२ ।

सरलार्थ–फिर बोली, "केकड़े जैसे कौओं के काबू में आते हैं (कौए उन्हें जैसे मारते हैं) व्यान वायु के अधीन तुम्हारे पंचप्राण मेरे अधीन होंगे । अर्थात् तुम्हारे पंचप्राण मैं लूँगी" । यह कह कर उसके एक थप्पड़ उठाते ही रामचन्द्र ने उस पर अर्द्धचन्द्र वाण का प्रयोग किया । (४२)

बिशाळ तुंग शाळ महीरूह । बिच्छेदिला प्राये पड़िला देह ।
बाहार तहुँ दिव्य रूप हेला । बिमान आरोहि स्वर्गकु गला ।४३।

सरलार्थ–उसी वाण के आघात से ताड़का का शरीर दो खंड हो कर नीचे गिरा, मानो एक विशाल, उच्च शालवृक्ष कटकर नीचे गिर पड़ा हो । उस शरीर से एक अलौकिक रूप निकलकर विमान पर बैठकर स्वर्ग सिधारा । (४३)

बृष्टि कले पुष्प वाद्य बजाइ । बिबुध निकर आकाशे रहि ।
बन य़े काळिका देवी आकार । बाहुरु ताड़ कि भांगिला तार ।४४।

सरलार्थ–ताड़का का वध देखकर देवताओं ने आकाश में एकत्र होकर वाद्य बजाकर पुष्पवृष्टि की । वन मानो कालिका देवी हो और ताड़का के निधन पर मानो उसके बाहु से बाजूबन्द टूट गया हो । (४४)

ताड़—बाजूबन्द । (उत्प्रेक्षा) (४४)

बेदवंशर बिनाश उद्वेग । बिध्वंसि दैत्य रखिब मो य़ाग ।
बिगळित ताप होइलि आग । बृजिनी गला बरि स्वर्गभोग । ४५ ।

सरलार्थ—ताड़का के निधन पर विश्वामित्र के मन से उद्वेग घट गया । उनका विश्वास दृढ़ हुआ कि ये राम ही असुरों का वध करके मेरी याग-रक्षा करेंगे । इन्हें देखकर मैं आज पापमुक्त हुआ और इनके हाथों से निहत होकर पापिनी ताड़का स्वर्ग-भोग करने को गयी । (४५)

वेदवंशर—विश्वामित्र का; वृजिनी—पापिनी । (४५)

बिपक्षपक्ष नाहिँ मोक्षदायी । बिष्णु ए स्वयं अवतीर्ण मही ।
बपुरे लीन अवतार मान । बसन्ति पुरुषलक्षणे मीन । ४६ ।

सरलार्थ–ये स्वयं विष्णुजी हैं जो पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं । शत्रु-मित्र को एक समान समझकर ये सब को मोक्ष प्रदान करते हैं । दश

अवतार इनके शरीर में लीन होकर रहे हैं। महापुरुषों के लक्षण मीन इनके शरीर पर दिखाई दे रहे हैं। (४६)

विपक्षपक्ष—शत्रु-मित्र; वपु—शरीर। (४६)

बिख्यात हेले मन्दर ताड़ने। बराहवरे ए निपुण गुणे।
बसन हिरण्य-प्रथा गञ्जन। बळिशिरे पाद देइ गमन। ४७।

सरलार्थ–पहले विष्णुजी ने कूर्मावतार में मन्दर पर्वत उखाड़ कर ख्याति प्राप्त की थी, अब रामावतार में दुष्टा ताड़की का विनाश करके ख्याति प्राप्त की। पहले इन्होंने वराहरूप धारण करके असीम पराक्रम प्रदर्शित किया था, अब अपने वीरोचित गुणों से प्रधान-प्रधान युद्धों में निपुणता प्राप्त की है। नृसिंहावतार में हिरण्यकश्यपु का गर्व गंजन किया था, अब पीतवसन धारण करके सुवर्ण की प्रभा को परास्त कर रहे हैं। फिर वामनावतार में वलि के मस्तक पर पाद स्थापन करके उन्हें पाताल में पहुँचाया था, वैसे ही अब बलवान् वीरों के मस्तकों पर पैर रख कर गमन कर रहे हैं, अर्थात् वीरश्रेष्ठ हुए हैं। (४७)

मन्दर—पर्वत विशेष, दुष्टों का; वराहवरे—श्रेष्ठ वराह के रूप में, प्रधान युद्ध (वर+आहवरे) में; हिरण्य-प्रभा—हिरण्यकश्यपु का गर्व, सुवर्ण का तेज; बळि—बलिराजा, बलवान् (बळी); (श्लेषालंकार) (४७)

बिजित तेजरे सहस्रकर। बर्ण्णरे कृष्ण करि अङ्गीकार।
बळ संग होइअछि सहजे। बुद्धत्व बुद्धिरे पुण उपुजे। ४८।

सरलार्थ–पहले परशुराम के रूप में अपने असाधारण विक्रम से इन्होंने सहस्रार्जुन को जीता था, अव रामावतार में अपने तेज से सूर्य को परास्त कर रहे हैं। अपनी शरीर-कान्ति में कृष्णवर्ण को धारण करने के कारण (अर्थात् नव-दूर्वादल-श्यामल शरीर धारण करने के कारण) अब नन्दनन्दन कृष्णावतार को भी अंगीकार कर रहे हैं। कृष्णावतार में बलराम, भाई के रूप में इनके संग थे। अब रामावतार में बल (पराक्रम) सहज इनके संग है। (अर्थात् ये महापराक्रमी हैं।) बुद्ध के रूप में इन्होंने बुद्धत्व (ज्ञान) प्राप्त किया था, अव भी बुद्धि की तीव्रता के हेतु इन्होंने पाण्डित्य प्राप्त किया है। (४८)

सहस्रकर—सहस्रार्जुन, सूर्य; कृष्ण—नन्दनन्दन, काला; बल—बलराम, पराक्रम; सहजे—भाई के रूप में, सहजही; बुद्धत्व—बुद्धावतार-भाव, पाण्डित्य; (श्लेषालंकार) (४८)

विभ्राजमान सायकरे अति । बिदित करुछि गन्धर्व गति ।
वर्त्तमान भूत भविष्य घेनि । बिक्षणे अवतारी एहि चिह्नि । ४९ ।

सरलार्थ—पहले कल्कि अवतार में ये अपने हाथों में तीक्ष्ण खङ्ग-धारण करके द्रुतगामी अश्व के पृष्ठपर शोभायमान हुए थे। अब उसी तरह अत्यन्त तीक्ष्ण शर तथा धनुष धारण करके (वध्य के पीछे) गन्धर्व की तरह शीघ्र दौड़ने में कुशल हैं। (अर्थात् श्रेष्ठ धनुर्धर वीर हैं। इस तरह रामचन्द्र में वर्त्तमान, भूत तथा भविष्यत के सब लक्षण देखकर ऋषि ने उन्हें निस्सन्देह अवतारी नारायण समझा। (४९)

सायक—खड्ग, शर; गन्धर्व—अश्व, देवयोनि-विशेष; (श्लेष) (४९)

बप्ता भाग्युँ दशरथ नृपति । विद्यागुरु होइ रहु मो कीर्त्ति ।
बिबेकी ऋषि स्नानबिधि सारि। बिजया जया मन्त्र दान करि । ५० ।

सरलार्थ—अनन्तर ऋषि ने विवेचन किया कि राजा दशरथ ने अपने सौभाग्य से जैसे पिता होकर पृथिवी में कीर्त्ति स्थापित की है, वैसे ही रामचन्द्रजी का विद्यागुरु हो कर मैं भी पृथिवी में अक्षय कीर्त्ति स्थापित करूँगा। यह निश्चय करके स्नानविधि आदि समाप्त करके विवेकी ऋषि ने राम को 'जया', 'विजया' नामक दो मन्त्र प्रदान किये। (५०)

बप्ता—पिता। (५०)

बिशाळ कटक सीमारे स्थित। बिचारु अस्त्र शस्त्र उपगत ।
बीरेश्वर राम पचारुँ सत । बदन्ति मुनि से देश चरित । ५१ ।

सरलार्थ—उसके बाद राम 'विशालकटक' नगरी की सीमा पर उपस्थित हुए। ऋषिदत्त मन्त्रों को स्मरण करते ही सभी अस्त्र-शस्त्र उनके पास आकर उपस्थित हुए। वीरश्रेष्ठ राम के ऋषि से 'विशाल-कटक'-चरित पूछने पर ऋषि ने सारे चरित उनसे कह सुनाये। (५१)

बासर निशिए तहिँ रे रहि। बहिले प्रभात हरष होइ ।
बान पदे ए छान्द मनोहर। बिरचे उपइन्द्र बीरवर । ५२ ।

सरलार्थ—उसी नगरी में एक अहोरात्र (दिनरात) यापन (बिता कर) किये, सुबह वे सहर्ष अन्यत्र गये। वीरवर उपेन्द्र ने बावन पदों में इस छान्द की मनोहर रूप से रचना की। (५२)

॥ इति षष्ठ छान्द ॥

सप्तम छान्द

राग—पट्टहमञ्जरी

बिड़ोजा सुधांशु गुरु संगति समान ।
बेनि भ्राता मुनि संगे देखे सिद्धवन । १ ।
बृक्षतति तपिपन्ति तहिँ एकाकृति ।
वळ्कळ पिधान करि जटा धरिछन्ति । २ ।

सरलार्थ—इन्द्र से युक्त चन्द्र तथा वृहस्पति के समान, राम-लक्ष्मण दोनों भाई विश्वामित्र से युक्त होकर 'सिद्धवन' नामक तपोवन देखने लगे। उन्होंने देखा कि उस वन में वृक्ष तथा मुनिगण एक ही प्रकार के दीख रहे हैं। जिस प्रकार वृक्षों ने वल्कलावृत होकर बरोह धारण किये हैं, उसी प्रकार ऋषियों ने भी वल्कल वस्त्र धारण करके जटाएँ धारण की हैं। (१-२)

बिड़ोजा—इन्द्र; सुधांशु—चन्द्र; गुरु—बृहस्पति; बृक्षतति—वृक्षसमूह; तपिपन्ति—मुनियों का समूह; तहिँ—वहाँ; वल्कल—पेड़ की छालें; पिधान करि—पहनकर; जटा—बरोह (बरगद की जटा), मुनि की जटा; धरिछन्ति—धारण की हैं। (१-२)

बेदि सार मूळ सदा सुमना फळद ।
बास वृत पूर्णचय अति स्थिर हृद्य । ३ ।

सरलार्थ—उन सब वृक्षों के मूलों (जड़ों) में उत्कृष्ट वेदियाँ विद्यमान हैं। वे वृक्ष हमेशा वनवासी ऋषियों को फूल तथा फल दान करते हैं और पत्ररूपी वस्त्रों को धारण करके स्थिर रूप से अपने-अपने स्थान पर खड़े होकर वनभूमि की शोभा बढ़ा रहे हैं। उसी तरह मुनि लोग, जो वेदवान् (वेदों को जानने वाले) तथा शान्तचेता हैं, तप, यज्ञ, ध्यान आदि वेदों की सार वस्तुओं को मूल मान कर (इन विषयों के प्रति सर्वप्रथम ध्यान देकर) पर्णकुटीरों में वास कर रहे हैं। वे निर्मलमना तथा वाञ्छित फलों के दाता हैं। (३)

वेदीसार—श्रेष्ठ (उत्कृष्ट) वेदियाँ, वेदवान्; सुमना—फूल, निर्मलमना; फलद—फलदाता, वाञ्छित फलों के देनेवाले; वास—रहने का स्थान, वस्त्र; पर्णचय—पत्र-समूह, पत्रकुटीर; स्थिरहृद्य—शान्तचेना। (श्लेषालंकार) (३)

बनाधार प्राये लतातळ मनोहर।
विश्रामिछन्ति कमळ हंसताप दूर। ४।

सरलार्थ–उस तपोवन में लताओं के निम्नदेश अर्थात् जलपूर्ण आल-बाल (गड्ढे) तालाबों के समान सुन्दर हैं। तालाबों में कमल खिलते हैं और उनमें हंस तैरकर अपना-अपना कष्ट दूर करते हैं। उसी तरह लताओं के निम्न प्रदेशों में (थालों में) मृगों ने विश्राम किया है और छाया तथा जलयुक्त होने के कारण सूर्य का ताप वहाँ से दूर रहता है। (४)

बनाधार—जलाधार, तालाब, पुष्करिणी; प्राये—सदृश; लतातल—लताओं के निम्नदेश, आलबाल, थाले, कमळ—पद्म, मृग; हंस—हंस पक्षी, सूर्य। (श्लेष तथा उपमा) (४)

विघटित घन पुष्प भ्रमरे सहित।
बिनोदी जनमानङ्कु हरुअछि चित्त। ५।

सरलार्थ–गम्भीर जलाशय में भँवर पैदा होकर सौन्दर्य से किनारे पर विहार करने वाले लोगों के मन बहलाता है। उसी प्रकार यह तपोवन वृक्षों तथा लताओं की भ्रमर-चुम्बित घनी पुष्पराशि से विमण्डित होकर उस वन में विहार करने वाले लोगों के मन बहला रहा है। (५)

घनपुष्प—जल, पुष्पाच्छादित; भ्रमरे—भँवर में, भौंरों से। विनोदी जनमानङ्कु—विहार करनेवाले लोगों के; हरुअछि चित्त—दिल बहला रहा है। (श्लेष) (५)

बनर केउँ प्रदेश अदिति प्रकार।
बत्सक अनुभावरे शिखी शोभाकर। ६।

सरलार्थ–उस तपोवन का कोई अंश देवमाता अदिति की तरह दिखाई पड़ रहा है। क्योंकि देवमाता जिस प्रकार अपने पुत्र अग्नि के तेज से तेजस्विनी दीखती हैं, उसी प्रकार यह वन गिरिमल्लिकाओं (कुटजवृक्षों) के सौन्दर्य से विमण्डित वृक्षों से सुशोभित है। (६)

केउँ प्रदेश—कोई अंश; अदिति—देवमाता; वत्सक—पुत्र, गिरि-मल्लिका (कुटज); अनुभावरे—तेज से; शिखी—वृक्ष, मयूर, अग्नि। (श्लेष तथा उपमा) (६)

बरुण देववल्लभ उदय करिछि।
बहु सुमना सन्तोषकर होइअछि। ७।

सरलार्थ–और भी, देवमाता ने जैसे वरुण और इन्द्रदेवता को उत्पन्न करके देवताओं के हृदय में असीम सन्तोष प्रदान किया है, वैसे ही इस

वन के किसी-किसी अंश में वरुणा तथा पुन्नाग आदि पेड़ों से पैदा होकर अनेक फूलों से मण्डित होने से वनस्थली दर्शकों को संतोष प्रदान कर रही है। (७)

वरुण—जलदेवता, वरुणा का पेड़; देववल्लभ—इन्द्र, पुन्नाग वृक्ष(सुल्ताना चम्पा जिसमें लाल फूलों के गुच्छे लगते हैं); सुमना—देवता, पुष्प। (७)

बनर केउँ प्रदेश दिति छबि धरि।
बिजनित दैत्यगण-रूप अछि धरि। ८।
बिस्तारिछि पवन लीळाकु निरन्तर।
विशेषत मुनि नगरे से मनोहर। ९।

सरलार्थ—वन के कुछ अंशों ने दैत्यमाता दिति की छवि धारण की है, क्योंकि दैत्यमाता ने जैसे दैत्यों (राक्षसों) को जन्म दिया है, वैसे ही इस वन ने राक्षसों के समान अत्यन्त भीषण रूपवाले मुरामांसी (एकांगी) आदि कण्टक-वृक्षों को जन्म दिया है; और दिति जैसे मनोहर कश्यप ऋषि के नगर में सर्वदा अपने पुत्र पवन को खेला रही थीं, वैसे ही पवन इस वन के अगस्तिवृक्ष-पूर्ण किसी अंश में दूसरे प्रदेशों की अपेक्षा अधिकतर क्रीड़ाएँ कर रहा है। अर्थात् अगस्ति वृक्ष से अतिशय ऊँचे होने के कारण अति मन्द पवन से भी झूम रहे हैं।

विशेषः—दिति कश्यप की ज्येष्ठा पत्नी थीं। उनके पुत्र असुर लोग कनिष्ठा अदिति के पुत्रों—देवताओं से भय पाकर बचपन से घर छोड़ चले गये थे। इसलिए दिति पुत्रों को खेला नहीं सकी थीं। पवन दिति से जन्म लेने पर भी देवता थे और इसलिए देवताओं से न डर कर बचपन में घर पर रहे थे और दिति के द्वारा अत्यन्त आदर के साथ पाले-पोसे गये थे। (८-९)

दिति—राक्षस-माता; दैत्य—राक्षस, मुरामांसी नामक एक कंटीला पौधा, एकांगी; मुनिनगरे—कश्यप के नगर में, अगस्ति वृक्षों पर। (श्लेष तथा उपमा) (८-९)

बनर केउँ प्रदेश रञ्जने रञ्जन।
बिनता प्राये अरुण सुपर्ण सुमन। १०।

सरलार्थ—वन का कोई भाग रक्तचन्दन-वृक्षों से सुशोभित होने के कारण गरुड़ माता विनता की तरह दीखता है। क्योंकि विनता अरुण तथा गरुड़—इन दो पुत्रों से सुशोभित होती हैं। उसी प्रकार इस वन के रक्तचन्दन-वृक्ष-संकुल प्रदेश ने भी किञ्चित्-रक्तवर्ण-विशिष्ट कोमल पत्रों को धारण किया है तथा फूलों से सुशोभित हुआ है (१०)

रञ्जने—रक्तचन्दन वृक्षों से, रञ्जन—अनुरागजनक अर्थात् शोभित; विनता—गरुड़ की माता; अरुण—सूर्यसारथि, कुछ लाल वर्ण; सुपर्ण—गरुड़, कोमल पत्र; सुमन—आनन्दमन, फूल। (श्लेष तथा उपमालंकार) (१०)

बनर केउँ प्रदेश कद्रु छवि बहि।
बिहृष्टहर होइछि नागईश्वरहिँ। ११।

सरलार्थ–दूसरे किसी प्रदेश ने नागमाता कद्रु की शोभा धारण की है। नागमाता श्रेष्ठ नागों से सुशोभित होती हैं। वैसे ही यह प्रदेश भी नागेश्वर वृक्षों से सुशोभित होता है। (११)

कद्रु—नागमाता; नागेश्वर—नागश्रेष्ठ, नागेश्वर वृक्ष (श्लेष तथा उपमा) (११)

बनर केउँ प्रदेश संगीतर शाळा।
व्योम लासिका नर्त्तने होइअछि मेळा। १२।
विरळ गन्धर्वगाने ख्यात सातस्वर।
विताळ होइण राग जात मनोहर। १३।
बसन्त बास करिछि केदारहिँ मेळ।
विचळित ग्रहिँरे सदा सुमरदळ। १४।

सरलार्थ–वन का कोई प्रदेश संगीतशाला के समान शोभित है। संगीतशाला स्वर्गनर्त्तकी के नृत्य से शोभित है। वैसे यह प्रदेश भरत पक्षी के नृत्य से सुशोभित है। गन्धर्वों जैसे सुगायकों के सुन्दर राग तथा तालविशिष्ट सप्तस्वर गान से संगीतशाला गूँज उठती है। उसी तरह वन का और कोई भाग कोयल के अनुरागपूर्ण सप्तस्वरों से (सूक्ष्म स्वरों से) गूँज उठता है। संगीतशाला में ताललयविशिष्ट संगीत गाये जाते हैं। वन में भी ताळ (ताड़) के पेड़ बहुत विद्यमान हैं। संगीतशाला में वसन्तराग वास करता है। उसके साथ केदार राग भी मिलित होकर रहता है तथा उसमें उत्तम मर्द्दल (मृदंग) भी बजते हैं। उसी तरह वन-प्रदेश में भी वसन्त पक्षी (हलदी—वसन्त पक्षी) तथा वृक्षों के मूलों में आलबाल (या क्यारियाँ) सुशोभित हैं, तथा फूलों की पंखुड़ियाँ हवा से विचलित हो रही हैं। (१२-१३-१४)

व्योमलासिका—स्वर्गनर्त्तकी, भरत पक्षी; गन्धर्व—गायक, कोयल; राग—गीत का राग, स्नेह (अनुराग); वसन्त-वसन्त राग, हलदीवसन्त पक्षी; केदार—रागविशेष, क्यारियाँ, आलबाल; सुमरदळ—उत्तम मर्द्दल (मृदंग), फूल की पंखुड़ियाँ। (श्लेष) (१२-१३-१४)

बर्णुथिले सरिबार नुहे ए चरित ।
बिश्राम कले कौशिक मठे रघुसुत । १५ ।

सरलार्थ–उस सिद्धवन की कथा वर्णन करते रहने पर भी समाप्त नहीं होती। वहाँ विश्वामित्र के आश्रम में रामलक्ष्मण ने विश्राम किया। (१५)

बानप्रस्थ गृहिमाने त्वरिते मिळिले ।
ब्रह्मचारी दण्डी आसि आशिष बिहिले । १६ ।

सरलार्थ–रामचन्द्र के आगमन का समाचार पाकर वानप्रस्थाश्रमी तथा गृही तुरन्त आ मिले। ब्रह्मचारियों तथा संन्यासियों ने आकर आशीर्वाद दिया। (१६)

दण्डी–संन्यासी (१६)

बोधि विविध आशने मन ताहाङ्कर ।
बसिले रात्रे चन्द्रकरे अंगणर । १७ ।

सरलार्थ–इसके अनन्तर विश्वामित्र ने नाना प्रकार के भोजन से उन लोगों के मन को सन्तुष्ट किया और रात को चाँदनी में आँगन में उनके साथ बैठे। (१७)

अशन–भोजन; ताहाङ्कर–उनके; अंगणर–आँगन में। (१७)

बिगतभय होइण राक्षसङ्क हेतु ।
बोइले रघुनन्दन आरम्भ हे क्रतु । १८ ।

सरलार्थ–अनन्तर रामचन्द्र ने कहा, "हे मुनिश्रेष्ठ! अब आप राक्षसों से निडर होकर याग आरम्भ कीजिए। (१८)

विगतभय–निडर; क्रतु–यज्ञ। (१८)

बच प्रकाशरु ऋषि आनन्द होइले ।
बिबिध विधि समिधे यज्ञ आरम्भिले । १९ ।

सरलार्थ–रामचन्द्र के ये वचन सुनकर विश्वामित्र आनन्दित हुए और नाना प्रकार की यज्ञ-सामग्रियों तथा होम-काष्ठों से यज्ञ आरम्भ किया। (१९)

समिध–होमकाष्ठ। (१९)

बीतिहोत्र-प्रिया-नाद श्रवणे अस्त्रपे ।
ब्यग्रवन्ते परवेश होइले समीपे । २० ।

सरलार्थ—राक्षस लोग अग्नि की प्रियतमा 'स्वाहा' का शब्द सुनकर शीघ्र ही यज्ञ के पास प्रविष्ट हुए (२०)

बीतिहोत्र-प्रिया—अग्नि की प्रियतमा स्वाहादेवी; अस्रपे—राक्षस लोग। (२०)

बरायुध धृत क्रोधे प्रज्वळित मूर्त्ति।
विश्वकेतु नाम पुनः पुनः बोलुछन्ति। २१।

सरलार्थ—वे राक्षस लोग श्रेष्ठ अस्त्र धारण किये हैं। वे क्रोध से प्रज्वलित होकर बार-बार विश्वकेतु का नाम 'मार', 'मार' ('मारो', 'मारो') बोल रहे हैं। (२१)

वरायुध—श्रेष्ठ अस्त्र; विश्वकेतु—कन्दर्प, मार। (२१)

ब्याघ्रगन्ध आघ्राणे गोपरि पळायित।
बोलि बेनि अर्थे रक्ष रक्ष ऋषिव्रात। २२।

सरलार्थ—मुनि लोग 'रक्ष' कहते हुए ऐसे भागने लगे, जैसे गायें बाघ की गंध पाकर भागती हैं। (रक्ष के अर्थ राक्षस तथा रक्षा करो—दोनों हैं।) (२२)

बेनि अर्थे—'रक्ष' के दोनों अर्थों में; रक्ष—राक्षस, रक्ष—रक्षा करो, (यमक); ऋषिव्रात—मुनिसमूह। (२२)

बाणधनु दृढ़े धरि श्रीराम लक्ष्मण।
वीरुँ अन्तरु वाहार ए रव श्रवण। २३।

सरलार्थ—मुनियों के ये ('रक्ष' 'रक्ष') शब्द सुनकर राम तथा लक्ष्मण दोनों धनुष-वाण दृढ़ता से पकड़े लताओं की ओट से निकले। (२३)

वीरुं—लताओं के मध्य से। (२३)

बोलि एकान्त स्थळर नाम पुनः पुनः।
वाहिनी दुहिङ्कि घेनि तृणर समान। २४।
बातास्त्रे मारीच लक्षे योजने पकाइ।
विभावसु अस्त्रे देले सुबाहु जळाइ। २५।

सरलार्थ—राम-लक्ष्मण दोनों बारबार 'रह'-'रह' (ठहरो-ठहरो) कहते हुए आये और मारीच तथा सुबाहु इन दोनों के सैन्यों को तिनके के समान समझकर पवनास्त्र से मारीच राक्षस को लाख योजन तक उड़ा दिया तथा आग्नेयास्त्र से सुबाहु राक्षस को जला दिया। (२४-२५)

एकान्त स्थळर नाम—एकान्त स्थल का नाम—'रह' (ठहरो); वाहिनी—सेना; बातास्त्रे—पवनास्त्र से; विभावसु अस्त्र—आग्नेयास्त्र। (२४-२५)

बिच्छेदिले लक्ष्मण समस्त सैन्य-करी ।
वंश भाबुँ ताकु से कुठारपाणि परि । २६ ।

सरलार्थ–राक्षस-सेनाओं को बाँस के पेड़ समझकर लक्ष्मण ने उन्हें यों विनाश कर दिया जैसे कि [वनजातीय] शवर कुल्हाड़ी से बाँस-वन को निर्मूल करता है, अथवा राक्षस-सेनाओं को गयासुर के वंशधर समझकर लक्ष्मण ने महादेव की तरह उन सबका विनाश किया । (२६)

'कुल' का एक प्रतिशब्द 'वंश' जिसका अर्थ 'बाँस' भी होता है। अतएव 'वंशभाबु' का अर्थ है राक्षसों के वंश (कुल) को बाँस समझ कर; करी वंश भाबु—गजासुर-वंशधर समझ कर; कुठारपाणि—शवर, महादेव । (२६)

बहुत काळुँ अपूजा पृथ्वीदेवी थिले ।
बिहि रंगशोणिते कि मन्दार पूजिले । २७ ।

सरलार्थ–पृथिवी देवी चिरकाल से अपूजित थीं। (क्योंकि राक्षस लोग मुनियों का यज्ञ नष्ट कर देते थे।) राम-लक्ष्मण दोनों ने पृथिवी को राक्षसों के रक्त से रञ्जित कर दिया। यह देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो उन्होंने अड़हुल (गहरे लालरंग का जवा-पुष्प) के फूलों से पृथिवी देवी की पूजा की । (२७)

शोणिते—रक्त से; मन्दार—अड़हुल, जवा । (उत्प्रेक्षालंकार) (२७)

बाष्प खषा खसाइला नेत्रुँ चिन्ताकुळे ।
बिष्टि हेला आजुँ मो पुत्रङ्क अनुकूळे । २८ ।

सरलार्थ–राक्षसमाता दिति ने चिन्ताकुल होकर आँखों से आँसू बहाए । (उसने सोचा) आज से मेरे पुत्रों के शुभ में अशुभ का प्रवेश हुआ । (२८)

बाष्प—आँसू; खषा[१]—राक्षसमाता दिति; खसाइला[२]—बहाए; बिष्टि—अशुभ, अमंगल; अनुकूळे—शुभ में । (२८)

बसाइले अधः स्वर्ग हटरे त्रिशङ्कु ।
बाहुड़ि से आरम्भिले यज्ञकु निःशङ्कु । २९ ।

सरलार्थ–जिन विश्वामित्र ने कौतुक से राजा त्रिशंकु को अर्द्धस्वर्ग पर चढ़ा दिया था, उन्होंने लौटकर निर्भय मन से फिर यज्ञ आरम्भ किया । (२९)

बासवादि देवे हवि भुञ्जि तोष हेले ।
बाहुड़ पुरकु रामभद्र पचारिले । ३० ।

सरलार्थ–इन्द्रादि देवता हविर्भाग (यज्ञ का भाग) पाकर सन्तुष्ट हुए। (अर्थात् यज्ञ समाप्त हुआ।) अनन्तर रामभद्र ने "हम अब अयोध्या को लौटें" इसके लिए ऋषि की आज्ञा माँगी। (३०)

बिपुळ काम्यक वने थरे भ्रमिय़िबा।
बोलि बाहारिले मुनि घेनि बेनि य़ुबा। ३१।

सरलार्थ–यह सुनकर विश्वामित्र ने कहा, "चलो, हम लोग एक बार बड़े काम्यक वन में (गौतम मुनि के तपोवन में) थोड़ा घूम आवें"। यह कहकर राम-लक्ष्मण को साथ लिये ऋषि चल पड़े (३१)

बाटे से बनरे पड़िथिला दिव्यशिळा।
बिशोउँ रामचरण लागि से अबळा। ३२।

सरलार्थ–काम्यक वन को जाने के मार्ग पर एक सुन्दर पत्थर पड़ा हुआ था। विश्राम के उद्देश्य से रामचन्द्र द्वारा उसके ऊपर पदार्पण करते ही वह पत्थर एक स्त्री बन गया। (३२)

बिशोउँ–विश्राम करने के अभिप्राय से। (३२)

बिस्मय होइ अनाइँ भाबि रघुपति।
बनीतार[1] बनितार[2] प्रभा एकाकृति। ३३।

सरलार्थ–रामचन्द्र ने आश्चर्य से उस पत्थर की ओर देखकर सोचा, "इस काम्यक वन की शोभा तथा इस वनिता (स्त्री) की शोभा, दोनों एक-सी हैं। (३३)

अनाइँ–देखकर; बनीतार[1]–उपवन की, काम्यक वन की; बनितार[2]–स्त्री की (य़मकालंकार) (३३)

बनप्रिय[1]-तोषदानी रमणी ए[1] लोके[1]।
वनप्रिय[2]-तोषदानी रमणीए[2] लोके[2]। ३४।

सरलार्थ–यह रमणी मुनि गौतम की आनन्ददायिनी तथा संसार में कमनीय है। यह काम्यक बन भी उसी तरह कोयलों का आनन्ददायक तथा देखने में मनोरम है। (३४)

वनप्रिय[1]–गौतम महर्षि (वन है प्रिय जिनका); तोषदानी–आनन्ददायक; रमणी ए[1]–यह स्त्री; लोके[1]–संसार में; वनप्रिय[2]–कोयल; रमणीए[2]–रमणीय, सुन्दर; लोके[2]-अवलोकनार्थ; (सर्वयमक) (३४)

बिराजि[1] वर-कनक[1] कदम्ब रुचिरे ।
बि-राजि[2] वर कनक[2] कदम्ब रुचिरे । ३५ ।

सरलार्थ–यह श्रेष्ठ रमणी अपने शरीर की कान्ति से शुद्ध सुवर्ण की तरह देदीप्यमान है । यह वन भी विविधि पक्षियों के द्वारा सुशोभित है तथा बरगद, पलास और कदम्ब आदि पेड़ों से विमण्डित है। (३५)

विराजि[1]—देदीप्यमान; वर-कनक-कदम्ब[1]—श्रेष्ठ या शुद्ध सुवर्णसमूह; वि-राजि[2]—पक्षि-समूह; वर[2]—बरगद, कनक[2]—पलास, कदम्ब—कदम्ब का पेड़। (सर्वयमक) (३५)

बासरे[1] आच्छन्न शोभा तुंग[1] पयोधरे[1] ।
बासरे[2] आच्छन्न शोभा तुङ्ग[2] पयोधरे[2] । ३६ ।

सरलार्थ–यह रमणी अपने दोनों उन्नत स्तनों को वस्त्र द्वारा आच्छादित करके शोभा पा रही है। उसी तरह यह काम्यक वन भी पुष्पसौरभ से परिपूर्ण होकर अत्युच्च नारियल के वृक्षों से आच्छादित है। (३६)

वासरे[1]—वस्त्र से; तुंग[1]—उन्नत; पयोधरे[1]—स्तनों को; वासरे[2]—सौरभ से; तुंग[2]—अत्युच्च; पयोधरे[2]—नारियल के पेड़ों से। (सर्वयमक) (३६)

बेणी[1] केशरे[1] रञ्जन[1] सिन्दूर चितारे[1] ।
बेणी[2] केशरे[2] रञ्जन[2] सिन्दूर चितारे[2] । ३७ ।

सरलार्थ–यह रमणी अपनी केश-निर्मित वेणी तथा सिन्दूर की बिंदी से सुशोभित है। उसी तरह यह वन भी देवताड़, नागकेशर, रक्तचन्दन तथा सिन्दूरचिता आदि वृक्षों से मनोहर दिखाई देता है। (३७)

वेणी[1]—केशों की गूँथी हुई चोटी; केशरे[1]—बालों से; रञ्जन[1]—सुन्दर; सिन्दूर-चितारे[1]—सिन्दूर की बिंदी से; वेणी[2]—देवताड़ वृक्षों से; केशरे[2]—नागकेशरों से; रञ्जन[2]—रक्तचन्दन वृक्ष; सिन्दूरचिता[2]—रक्तवर्ण का वृक्षविशेष। (सर्वयमक) (३७)

बळा[1], मल्लिकढ़ि[1] फुल[1] मण्डन अतुल[1] ।
बळा[2], मल्लिकढ़ि[2] फुल[2] मण्डन अतुल[2] । ३८ ।

सरलार्थ–यह स्त्री पाजेव, मल्लिकढ़ी, करनफूल तथा अतुल (हस्ताभूषण विशेष) आदि गहनों से सुशोभित है। यह वन भी वाड़ी आँवला और अतुलनीय कलियों तथा फूलों से सुशोभित मल्लिका के पौधों से विमण्डित है। (३८)

बळा[१]—पैर का भूषणविशेष, पाजेब; मल्लिकढ़ि[१]—अलंकार विशेष; फुल[१]—करनफूल, अतुल[१]—हाँथ का अलंकार विशेष; बळा[२]—बाड़ी आँवला; मल्लिकढ़ि फुल[२]—बेले की कलियों तथा फूलों से; अतुल[२]—अतुलनीय, अनुपम। (सर्वयमक) (३८)

बिलोकि बिलोकि पुच्छा कले दाशरथि ।
बराङ्गना हेला शिळा कि विषय एथि ? ३९ ।

सरलार्थ—उस वनिता (रमणी) की ओर बार-बार देखकर रामचन्द्र ने विश्वामित्र से पूछा, "पत्थर दिव्य स्त्री बना; इसका विषय (रहस्य) क्या है, जरा बताइए"। (३९)

विश्वामित्र बोले आहे मित्रवंशी शुण ।
बिधाता भग्ने ऊर्वशी सुन्दरिमा टाण । ४० ।

बिधाता सर्वलावण्य धाम करि करूँ ।
बृत्रारि भानु मागिले देखि एहा चारुँ । ४१ ।

सरलार्थ—विश्वामित्र ने कहा, "हे सूर्यवंशी रामचन्द्र, सुनो। विधाता ने उर्वशी के सौन्दर्य-गर्व को भग्न करने के अभिप्राय से सर्वलावण्याधार इस स्त्री (अहल्या) का निर्माण किया। इसकी शोभा देखकर इन्द्र तथा सूर्य दोनों ने विधाता से उसे माँगा"। (४०-४१)

मित्रवंशी—सूर्यवंशी रामचन्द्र; सुन्दरिमा टाण—सौन्दर्य का गर्व; वृत्रारि—वृत्र राक्षस के शत्रु इन्द्र; भानु—सूर्य। (४०-४१)

बुलि धरणी य़े आगे आसिब चपळे ।
बामलोचना ताहाकु प्रापति बोइले । ४२ ।

सरलार्थ—विधाता ने कहा, "जो पृथ्वी की शीघ्र परिक्रमा करके पहले लौट आये, उसे ही यह वामलोचना प्राप्त होगी"। (४२)

बच स्फुरुँ भ्रमिगले दुइ देवोत्तम ।
ब्यजन चाळन करुथिले गउतम । ४३ ।

सरलार्थ—ब्रह्मा के मुख से यह वाणी निकलने पर दोनों श्रेष्ठ देवता (सूर्य और इन्द्र) पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिए चल पड़े; उस समय वहाँ गौतम ऋषि विधाता के पास बैठे पंखा डुला रहे थे। (४३)

ब्यजन—पंखा। (४३)

बोइले तुम्भे न गल किम्पा ए निमित्ते ।
ब्रह्म प्रदक्षिण करि से कर य़ोड़न्ते । ४४ ।

बिभा करुछन्ति ताङ्कु होइ पुरोहित ।
बड़ अभिमान पाइ रवि पुरुहूत । ४५ ।

सरलार्थ–ब्रह्मा ने मुनि से पूछा, "इस कन्या के लिए आप क्यों नहीं गये ?" यह सुनकर गौतम ब्रह्मा के चारों ओर घूम कर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। (इससे गौतमजी का ब्रह्मगर्भ-स्थित भूमण्डल-पर्यटन सूचित हुआ।) अनन्तर जब ब्रह्मा स्वयं पुरोहित बनकर गौतम तथा उस कन्या अहल्या का विवाह-कार्य संपादन कराने लगे कि उसी समय इन्द्र तथा सूर्य पृथिवी की परिक्रमा करके लौट आये। यह विवाहकार्य देख-कर उन्हें अपना बड़ा अपमान प्रतीत हुआ। (४४-४५)

किम्पा—क्यों, किसलिए; रवि—सूर्य; पुरुहूत—इन्द्र। (४४-४५)

ब्राह्मण जाया हेबारु तपन निवर्ति ।
बिरहि सेहि विषये महेन्द्र प्रवर्त्ति । ४६ ।
वशीकरण मन्त्रकु से दिनु जपिले ।
बाञ्छावट तळे रामासंग मनासिले । ४७ ।

सरलार्थ–उस रमणी के एक ब्राह्मण की पत्नी हो जाने से सूर्य अपनी नीच अभिलाषा से निवृत्त रहे। परन्तु इन्द्र कामविकार-वश अहल्या के विरह से विकल हो गये। उसकी सम्भोग-आशा हृदय में धारण करके वे प्रयागस्थ वाञ्छावट के नीचे 'वशीकरण' मन्त्र जपने लगे। (४६-४७)

बसन्त कोकिळ, अनङ्गकु उच्चाटने ।
बरगिले अति यत्न करि एहि बने । ४८ ।

सरलार्थ–अहल्या की उत्कण्ठा बढ़ाने के लिए इन्द्र ने वसन्त ऋतु, कोयल तथा कन्दर्प को बड़े यत्न के साथ इस काम्यक वन में भेजा। (४८)

उच्चाटने—उत्कण्ठा के लिए; बरगिले—भेजा। (४८)

बाड़बेयठारु पालटाइ मनोहर ।
बक्त्रविकारकु मात्र करिण अन्तर । ४९ ।

सरलार्थ–इन्द्र ने अश्विनीकुमार से उनके समूचे अंग-प्रत्यंगों की शोभा लाकर अपने शरीर में धारण की। (उनका मुख घोड़े का सा होने के कारण) केवल मुख की विकृति का इन्द्र ने परित्याग किया था। (४९)

बाड़वेय—अश्विनीकुमार; वक्त्रविकार—मुखविकृति। (४९)

बिनति एकान्ते देखि ये़ते भावे हे़ले ।
बिसम्मति सम्मतिकि किछि न जाणिले । ५० ।

सरलार्थ–अहल्या को एकान्त में देखकर इन्द्र ने कितने ही प्रकार से, उसकी विनती की । परन्तु उसकी सम्मति या असम्मति, कुछ भी नहीं जान सके । (५०)

बरबेश बहि रसे मानस उल्लासुँ ।
बृषदंश रूपे पळायत ऋषि आसुँ । ५१ ।

सरलार्थ–अन्त में इन्द्र अहल्या के पति (गौतम) का वेश धारण करके श्रृंगाररस में उसका मन उल्लसित करने लगे । इसी समय गौतम मुनि तपस्या से लौटे । उन्हें देखकर इन्द्र बिड़ाल रूप रखकर भाग गये । (५१)

वृषदंश—बिड़ाल, बिल्ला । (५१)

बळपर विनयी गौतम पचारन्ते ।
बिग्रहे सहस्रभग बह लिंग हते । ५२ ।

सरलार्थ–ध्यानबल से गौतम ने यह घटना जान ली और इन्द्र से इसके बारे में पूछा, तो इन्द्र ने बड़ी विनय प्रकाश की । तब मुनि ने सक्रोध शाप दिया, "तुम्हारा लिंग भग्न हो और तुम अपने शरीर पर सहस्र योनियाँ धारण करो" । (५२)

बळपर—इन्द्र; विग्रह—देह, शरीर । (५२)

बोलि रसाण हेमाङ्गी पाषाण कराइ ।
विश्वम्भरा-धर-राजे बास कले य़ाइ । ५३ ।

सरलार्थ–इन्द्र को ऐसा शाप देकर ऋषि विशुद्ध स्वर्णवर्णा अहल्या को पत्थर बना के चले गये और जाकर हिमालय पर्वत में वास करने लगे । (५३)

रसाण—शाणित, कसे हुए, विशुद्ध; हेमांगी—स्वर्ण के समान गोरे शरीर वाली; विश्वम्भरा-धर-राजे—(विश्वम्भरा—पृथिवी, भू; भूधर—पर्वत; पर्वतों में राजा)—हिमालय पर्वत में । (५३)

बाजि तव पद-गति लभिला सुगति ।
बन्दिला श्रीरामे शुणि से मुनि भारती । ५४ ।

सरलार्थ–तुम्हारे चरण की रज के स्पर्श से उसी अहल्या ने अभी

परमगति (अर्थात् पाषाणत्व से मुक्ति) प्राप्त की।" विश्वामित्र की यह बात सुनकर अहल्या ने श्रीराम (को साक्षात् विष्णु समझकर उन) की वन्दना की। (५४)

भारती—कथा, बात। (५४)

बन्दित पतिरे होइ उदित सेनेही।
विश्वामित्र पुणि हस हस होइ कहि। ५५।
विश्वमोही कन्या ए देखिले य़ेड़े रम्य।
विदेह देशे धरारु सुन्दरी ए जन्म। ५६।
विज्ञ बिहि थिला शिळा एहाकु कराइ।
बितर्कि ए सीतार चरणघषा एहि। ५७।

सरलार्थ—अनन्तर अपने वन्दनीय पति गौतम के प्रति अहल्या के मन में स्नेह का उदय हुआ। अर्थात् अहल्या गौतम के पास जाने को उत्सुक हुई और वहाँ गई। इसके बाद विश्वामित्र ने हँसते हुए फिर राम से कहा, "इस जगत्मोहिनी कन्या को तुमने जितनी सुन्दर देखा, उससे कहीं अधिक सुन्दर एक कन्या ने मिथिला में जन्म लिया है। विशेषकर ज्ञानी विधाता ने यह अनुभव करके कि सीताजी को एक पैर साफ करने वाला पत्थर चाहिए, अहल्या को पत्थर बनवाया था। अर्थात् यह अहल्या सीताजी के पैर साफ करने वाले पत्थर बनने के योग्य है। (५५-५६-५७)

पुणि—फिर; य़ेड़े—जितनी; रम्य—सुन्दर; बितर्कि—यह तर्क या अनुभव करके; चरणघषा—एक पत्थर जिस पर नहाते समय पैर घिसते हैं। (५५-५६-५७)

बर समे सुषमे जगते नाहिँ य़ेणु।
ब्योमकेश-धनुभग्न स्वयम्बर तेणु। ५८।

सरलार्थ—चूँकि उस कन्या की शोभा के अनुरूप वर जगत् में नहीं मिलता, इसलिए शिवधनुर्भंग-प्रण में उसका स्वयंवर स्थिर किया गया है। अर्थात् जो शिवधनु तोड़ेगा, वही सीताजी से विवाह करेगा। (५८)

सुषमें—शोभा में; य़ेणु—चूँकि; ब्योमकेश—शिवजी; तेणु—इसलिए। (५८)

वीरधू प्रकाश तव हेउ अतिशये।
बल्लभ हुअ [illegible] य़ाग रक्षा फळोदये। ५९।

स[illegible]लार्थ—विश्वा[illegible] ने रामचन्द्र को आशीर्वाद देते हुए कहा,

"तुम्हारी वीरता भली-भाँति प्रकाशित हो (सुबाहु, मारीच आदि राक्षसों का वध करने से जो वीरता जानी गई है, धनुर्भंग से वह अधिकतर प्रकाशित होगी।) हम लोगों की याग-रक्षा करने के फलस्वरूप तुम सीताजी के पति बनो"। (५९)

विभाकरवंशी बोले अछि परम्परा।
ब्रह्माण्ड-सार-सुन्दरी रम्भा अपसरा। ६०।

सरलार्थ–विश्वामित्र की बात सुनकर रामचन्द्र ने कहा, "पहले से तो यह प्रसिद्ध है कि रम्भा अप्सरा ब्रह्माण्ड में [सर्व-] श्रेष्ठ सुन्दरी है। [सीता क्या उससे बढ़कर सुन्दरी है?] (६०)

विभाकरवंशी—सूर्यवंशीय रामचन्द्र। (६०)

बिभाति ज्योतिरिंगण रात्रे देखाइ।
बिलुप्त प्रभात प्रभा येमन्त करइ। ६१।

बैदेही जातरु रम्भा तथा कहे ऋषि।
बाषठि पदे ए छान्द उपइन्द्र भाषि। ६२।

सरलार्थ–ऋषि ने कहा "जुगनू रात में अपना-अपना तेज दिखाते हैं। परन्तु प्रभात आकर उनकी प्रभा का विलोप कर देता है। सीता के आविर्भूत होने पर रम्भा की प्रभा वैसे ही विलुप्त हो गई है। उपेन्द्रभञ्ज ने बासठ पदों में इस छान्द की रचना की। (६१-६२)

बिभाति—प्रभा; ज्योतिरिंगण—जुगनू। (६१-६२)

॥ इति सप्तम छान्द ॥

विज्ञप्ति

भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ द्वारा 'भाषा शिक्षण सीरीज़' के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तकें :—

१. असमिया प्रवेश
२. ओड़िया प्रवेश
३. उर्दू प्रवेश
४. उर्दू प्रवेश (हदीस प्रकरण)
५. कन्नड प्रवेश
६. कश्मीरी प्रवेश
७. गुरुमुखी प्रवेश
८. गुजराती प्रवेश
९. तमिळ प्रवेश
१०. तॅलुगु प्रवेश
११. नेपाली प्रवेश
१२. बंगला प्रवेश
१३. मराठी प्रवेश
१४. मलयाळम प्रवेश
१५. सिन्धी प्रवेश

उपर्युक्त पुस्तकों में उद्देश्य का परिलक्षण; सम्बन्धित भाषा की वर्णमाला, उसका देवनागरी स्वरूप; भाषा की विशिष्ट ध्वनियाँ, मात्राएँ, स्वर और व्यञ्जन; संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का समावेश; हिन्दी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में समान रूप से प्राप्त देशी-विदेशी शब्द; आरंभिक व्याकरण और सर्वनाम, काल, विभक्ति-प्रत्यय, अव्यय, दिन-मास-संख्या तथा वाक्यों के उदाहरण—यह सामग्री देने के पश्चात् प्रत्येक भाषा के किसी लोकप्रिय मान्य ग्रंथ का मूल पाठ देवनागरी लिपि में देते हुए हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है।

उपर्युक्त व्याकरण आदि से सहारा लेकर प्रत्यक्ष प्रणाली (डाइरेक्ट मेथड) द्वारा उस संलग्न ग्रंथ के अनुवाद और लिप्यन्तरण को मिला कर अध्ययन करने पर सम्बन्धित भाषा में धीरे-धीरे प्रवेश सरलता से सुलभ है। संलग्न ग्रंथ बड़े हैं और उनकी कथा-वस्तु शिक्षार्थियों की जानी-समझी है। भाषा-प्रवेश में दिये गये उस ग्रंथ के पर्याप्त अंश के आगे भी ग्रंथ का शेष भाग ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हो रहा है। इन ग्रंथों का अध्ययन कर लेने के बाद न केवल हिन्दी, वरन् प्रत्येक भाषा-भाषी को भारत में बोली जाने वाली सभी भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो जायगा।

प्राप्ति स्थान—भुवनवाणी ट्रस्ट

प्रभाकर निलयम्, ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

मुद्रकः वाणी प्रेस, प्रभाकर निलयम ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३